आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

# विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी


वर्ष - २२ फरवरी-मार्च- २००३ अंक : २-३


रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

RAMAKRISHNA MISSION SEVASHRAMA
Vijnanananda Marg, Mutthiganj
Allahabad, 211003
Phone : 413369

## AN APPEAL

Dear Friend,

Ramakrishna Math & Ramakrishna Mission Sevashrama at Allahabad was founded in 1910 by His Holiness Srimat Swami Vijnanandaji Maharaj (1868-1938), a direct disciple of Sri Ramakrishna, Since then this centre has been rendering services to the people of Allahabad without distinction of caste, class and creed.

Besides cultural, religious and spiritual activities, this Sevashrama is running (1) A Public Library with a collection of 28,500 valuable books on various subjects with its 744 members and a Reading Room which receives 14 dailies and 41 periodicals in Hindi, English and Bengali languages. Daily average attendance in the Library and Reading Room is 70.

(2) A Homeopathic-cum-Allopathic Dispensary with Pathology, Physiotherapy, ECG. Ultrasound and specialist consultancy services such as Eye, E.N.T., Dental, Gynecology. Orthopedic, Cardiology, Pediatrics and Medicines. Daily about 300 Patients are being benefitted by this dispensary.

There is a great need for the extension of The Library for increasing the Text Book Section and also for providing space for the students to study. Also the lecture hall needs extension for accommodationg more people as the present Lecture Hall hardly accommodates 150 persons and is inadequate to meet our requirements for holding functions like Bhakta Sammelan and Youth Convention etc.

Similarly, agreat need is felt for an operation theatre in the Dispensary along with male and female wards and also an X-Ray plant.

## ESTIMATE OF FUNDS REQUIRED FOR

1. Extension of Library cum Lecture Hall — Rs. 18 lakhs
2. Extension of Dispensary Building including Operation theatre, — Rs. 22 lakhs
3. Male & Female wards and X-ray machine

Your generous donation for this holy cause will help us to run the activites smoothly and serve the people in a better way. We shall remain obliged for your contribution towards these cause. Your contribution will be thankfully acknowledged. Donation to Ramakrishna Mission Sevashrama are exempted from income Tax under Section 80G of the Income Tax Act, 1961. Please send your Cheque/Draft etc. in favour of "Ramakrishna Mission Sevashrama" crossed and account payee.

With prayer to the Lord for your welfare.

Yours in the service of the Lord

(Swami Tyagatmananda)

।। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।।

# विवेक-शिखा


श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

फरवरी - मार्च - २००३

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक-सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २२

अंक २-३

वार्षिक ६०/-    एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क

(२० वर्षो के लिए) ७००/-

संरक्षक - योजना

न्यूनतम दान - १०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक - शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर

छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : (०६१५२) २३२६३६

संस्थापक प्रकाशिका

स्व0 श्रीमती गंगा देवी


## इस अंक में

## (विवेक शिखा)
### के आजीवन सदस्य

१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द . रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर
१९५. श्री हरवंशलाल पाहड़ा - जम्मूतवी, कश्मीर
१९६. श्री योगेश कुमार जिंदल - दिल्ली
१९७. डॉ. अखिलेश्वर कुमार - कनखल
१९८. श्री अनिल कुमार पूनमचन्द जैन - नागपुर
२००. श्री डी. एन. देशमुख - चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
१९९. डॉ० शीला जैन - बीकानेर
२०१. श्री योगेश कुमार पालिया, झुनझुनू (राजस्थान)
२०२. सचिव, रामकृष्ण वि. सेवाश्रम,
अम्बिकापुर (म०प्र०)
२०३. श्री ओमभक्त बुडाथोपी - डाँग, नेपाल
२०४. श्री ए.डी. भट्टाचार्य - भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक
गिरिडीह (बिहार)
२०७. सचिव-रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव- रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत - मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री पंकज कुमार, सुवंसिरी (अ० प्र०)
२११. श्री वी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२१२. श्री कैलाश खेतान, नगाँव (आसाम)
२१३. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१४. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१५. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१६. श्री नन्द लाल टांटिया, उत्तर काशी
२१७. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१८. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी

## (विवेक शिखा)
### के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रूपये या इससे अधिक रूपये "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू हैं।

व्यवस्थापक

### संरक्षक सूची

| क्र. | नाम | स्थान | राशि |
|---|---|---|---|
| १. | श्रीमती कमला घोष | - इलाहाबाद | -३,०००/- |
| २. | श्री नन्दलाल टाँटिया | - कोलकाता | -१,०००/- |
| ३. | श्री हरवंश लाल पाहड़ा | - जम्मूतवी | -१,०००/- |
| ४. | श्रीमती निशा कौल | - कोलकाता | -१,०००/- |
| ५. | डॉ. सुजाता अग्रवाल | - कर्नाटक | -१,०००/- |
| ६. | श्रीमती सुभद्रा हाकसर | - कोलकाता | -५,०००/- |
| ७. | स्वामी प्रत्यगानन्द | - चेन्नई | -१,०००/- |
| ८. | श्रीमती रंजना प्रसाद | - रायपुर | -१,०००/- |
| ९. | श्री जी.पी.एस. घिमीरे | - काठमांडू | -१,०००/- |
| १०. | डॉ० निवेदिता बक्शी | - कुर्ला पं०मु० | -१,०००/- |
| ११. | श्री उमापद चौधरी | - देवघर | -१,०००/- |
| १२. | श्री शत्रुधन शर्मा | - फतेहबाद | -१,०००/- |
| १३. | श्री प्रभुनाथ सिंह | - माने, बिहार | -१,०००/- |
| १४. | श्री रामकृष्ण वर्मा | - कोटा राजस्थान | -१,०००/- |
| १५. | श्री कीर्त्यानन्द झा | - पटना, बिहार | -१,०००/- |
| १६. | श्री रामअवतार चौधरी | - छपरा, बिहार | -१,०००/- |
| १७. | डॉ. निधि श्रीवास्तव | - जमशेदपुर | -१,०००/- |
| १८. | श्री सतोश कुमार वंशल | - दिल्ली | -१,०००/- |
| १९. | श्री उदयवीर शर्मा | - खंडवाया उ०प्र० | -१,०००/- |
| २०. | श्री आर. बी. देशमुख | - पुणे | -१,००१/- |
| २१. | कुमारी उषा हेगड़े | - पुणे | -१,०००/- |
| २२. | श्री राजकेश्यर राम | - छपरा, बिहार | -१,०००/- |
| २३. | डॉ.(श्रीमती) नीलिमा सरकार | -कोलकाता | -२,०००/- |
| २४. | श्री एन.के. वर्मा | - मुम्बई | -१,०००/- |
| २५. | श्री अशोक राव | - छिंदवारा | -१,१००/- |
| २६. | श्री मोती लाल खेतान | - पटना | -१,०००/- |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

# विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष - २२ फरवरी-मार्च- २००३ अंक : २-३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप तिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

## श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१) संसार में मनुष्य दो तरह की प्रवृत्तियाँ लेकर जन्मता है - विद्या और अविद्या। विद्या मुक्तिपथ ले जानेवाली प्रवृत्ति है और अविद्या संसार-बन्धन में डालनेवाली। मनुष्य के जन्म के समय ये दोनों प्रवृत्तियाँ मानो खाली तराजू के पल्लों की तरह समतोल स्थिति में रहती हैं। परन्तु शीघ्र ही मानो मनरूपी तराजू के एक पल्ले में संसार के भोग-सुखों का आकर्षण तथा दूसरे में भगवान् का आकर्षण स्थापित हो जाता है। यदि मन में संसार का आकर्षण अधिक हो तो अविद्या का पल्ला भारी होकर झुक जाता है और मनुष्य संसार में डूब जाता है; परन्तु यदि मन में भगवान् के प्रति अधिक आकर्षण हो तो विद्या का पल्ला भारी हो जाता है और मनुष्य भगवान की ओर खिंचता चला जाता है।

(२) यदि एक बार कोई तीव्र वैराग्य के द्वारा भगवान् की प्राप्ति कर ले तो फिर उसमें स्त्रियों के प्रति आसक्ति नहीं रह जाती। यहाँ तक कि घर में रहकर अपनी स्त्री से भी उसे कोई भय नहीं रहता। अगर लोहे के एक ओर बड़ा और दूसरी ओर छोटा चुम्बक हो तो लोहे को कौन खींच सकेगा? निःसन्देह बड़ा चुम्बक ही। ईश्वर बड़ा चुम्बक है और कामिनी छोटा चुम्बक। ईश्वर के आकर्षण के सामने भला कामिनी क्या कर सकती है?

(३) 'मैं' दो तरह का होता है, एक है 'पक्का मैं' और दूसरा 'कच्चा मैं'। ''जो कुछ मैं देखता, सुनता या महसूस करता हूँ उसमें कुछ भी मेरा नहीं है, यहाँ तक कि यह शरीर भी मेरा नहीं है।'' ''मैं नित्य मुक्त हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ'' - यह 'पक्का मैं' है। ''यह मेरा मकान है'', ''यह मेरा लड़का है'', ''यह मेरी पत्नी है'', ''यह मेरा शरीर है'' - यह सब कच्चा मैं' है।

(४) बालक का मन सोलहों आने अपने वश में रहता है। (उम्र बढ़ने पर धीरे-धीरे मन कई भागों में विभक्त हो जाता है।) विवाह होते ही उसका आठ आना हिस्सा पत्नी के वश में चला जाता है, फिर सन्तान होने पर चार आना उनमें बँट जाता है। बचा हुआ चार आना मन माँ-बाप, मान-सम्मान, वेश भूषा, ठाटबाट आदि में लगा रहता है, भगवान्, में लगाने के लिए कुछ बचता ही नहीं। इसीलिए छोटी अवस्था में ही मन को भगवान की ओर लगाया जाए तो सहज में भगवान की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु उम्र बढ़ जाने के बाद यह अत्यन्त कठिन हो जाता है।

(५) हवा बहने लगे तो पंखे की जरूरत नहीं रह जाती। ईश्वर की कृपा हो जाए तो साधन-भजन की आवश्यकता नहीं रहती।

♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦

# श्रीरामकृष्ण - वन्दना

(मधुवन्ती-त्रिताल)

- विदेह

हे रामकृष्ण करुणानिधान।
हो व्याप रहे तुम कण-कण में,
आनन्द रूप मंगल-विधान।।

भव के पद-सम्पद विपद भरे,
तव पद-सम्पद धर जीव तरे,
हर लो मन की माया-ममता।
दो मुझको निर्मल भक्ति-ज्ञान।।

हूँ जनम जनम का मैं प्यासा,
यदि कृपा विन्दु दो थोड़ा-सा,
फेरो मुझ पर निज स्नेह-दृष्टि,
भर जाएँ मेरे हृदय-प्राण।।

आया हूँ लम्बा पथ चलकर,
विषयों के विष से जल-भुनकर
पूरण कर दो मेरी आशा
देकर चरणों का सन्निधान।।

दुखदाई है जग की माया,
सुखमय भासित मिथ्या छाया,
विस्मृत कर सारे नाम रूप,
प्रतिपल होवे तव विमल ध्यान।।

हे रामकृष्ण करुणा निधान।
हो व्याप रहे तुम कण-कण में
आनन्द रूप मंगल-विधान।।

सम्पादकीय सम्बोधन

# हे विधाता, माँगता हूँ एक मुट्ठी भोर!

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

वह रात बड़ी काली थी। चारों ओर घुप्प अंधकार। सन्नाटे को तोड़ती हुई ट्रेन काफी तेजी से आगे दौड़ती जा रही थी। डब्बे की वत्ती गायब थी। यात्री अपनी-अपनी बर्थ पर सो चुके थे। मैं खिड़की के किनारे वैठा वाहर देख रहा था। अंधकार के मोटे-मोटे आँचल में सिमटी धरती के दूर-दूर तक कुछ नहीं दीख रहा था। सब कुछ स्तब्ध। सव कुछ खामोश। समाधिस्थ। हवा सायँ-सायँ बह रही थी। लगता था अँधकार के सागर में ज्वार उठ रहा हो। मैं किसी अदृश्य देवता की महालीला देख रहा था जैसे! प्रकृति कितनी विचित्र है! कहाँ गया दिन का प्रकाश पुँज! कहाँ गया भीड़ का कोलाहल! कहाँ खो गयीं खेत-खलिहानों, नदियों, पहाड़ों, बाग-बगीचों की मन-मादन सुन्दरता! सब को इस निविड़ तिमिर ने लील लिया हो जैसे !

तभी किसी यात्री ने एक दर्द भरी सुरीली तान छेड़ी। बड़ा मर्मभेदी सुर था।

जिंदगी दुःख से भरी है आँसुओं की भीड़
मन-गगन में वेदना का घन घिरा गंभीर;
हर तरफ छाया अंधेरा है अशेष अपार
है पड़ी किश्ती भँवर में, उठ रहा है ज्वार;
घोर तम के सर्प फन फैला रहे हर ओर
हे विधाता, माँगता हूँ एक मुट्ठी भोर!

गायक की जिन्दगी थकी-थकी लग रही थी। वह कहीं से टूट चुका था। निराशा के नाग-दंश से वह कराह रहा था जैसे! उसके स्वर की टीस से मैं भी भींग गया था। करुणार्द्र हो गया था।

ऐसा नहीं था कि मैं उस गायक की निजी वेदना से ही भर गया था। उसकी पीड़ा तो छू ही रही थी। लेकिन मुझे लग रहा था, कितना ठीक यह गायक गा रहा है! आज हर किसी की जिन्दगी दुःख से भरी है। सर्वत्र आँसुओं की भीड़ है। सव के जीवन में वेदना के बादल छाये हैं। हर जगह अंधकार-ही अंधकार है। सब की जीवन-नौका किसी भँवर में फँसकर डगमगा रही है। हर प्राण एक मुट्ठी रोशनी के लिए, अँजुरी भर सुख-शान्ति के आलोक के लिए तड़प रहा हैं छटपटा रहा है। आह! कहाँ हो, हे प्रकाश के देवता! क्यों नहीं आलोक की वर्षा कर सब के जीवन का तिमिर-ताप हर लेते हो! मैं भीतर-ही-भीतर प्रार्थना की मुद्रा में आ गया था। गायक का स्वर बढ़ता जा रहा था -

वे पराये हो गये, जो थे कभी अपने
भरभरा कर ढह गये सब सुनहले सपने;
कंठ में उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर;
एक हाहाकार उर में एक शोर अथोर
हे विधाता, मांगता हूँ एक मुट्ठी भोर !

सचमुच सव हृदय में एक भयंकर हाहाकार है, एक अशेष असीम चींख-पुकार है। मैं और भी गलने-पिघलने लगा।

मैं सोचने लगा, चूँकि हर व्यक्ति के जीवन में अंधकार है, शोर है, चींख-पुकार है, वेदना का दुर्वह भार है, इसलिए, प्रकारान्तर से आज हमारे पूरे देश में ही यह अँधकार फैल-पसर गया है। व्यक्ति जब टूटता है भीतर से, तव प्रकारान्तर से देश भी टूटता है भीतर से, कहीं गहरे से। व्यक्ति की चींख-पुकार राष्ट्र की चींख-पुकार बनकर उभर आती है।

किन्तु व्यक्ति क्यों टूटता है भीतर से? जब व्यक्ति के सपने टूटते हैं, उसकी आशाएँ, कल्पनाएँ और अपेक्षाएँ विफल हो जाती हैं, अधूरी रह जाती हैं तब वह टूटने लगता है। उसे सर्वत्र अंधकार-ही-अंधकार नजर आने लगता है। गायक ने ठीक ही गाया था -

वे पराये हो गये, जो थे कभी अपने
भरभरा कर ढह गये सब सुनहले सपने
कंठ से उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर

जब सपने ढहेंगे, अपने बेगाने होने लगेंगे तो व्यक्ति का मन टूटेगा ही। फिर उसके भीतर के कोमल मनोरम दिव्य भाव सूखने लग जाएँगे। उसके भीतर प्रार्थना के स्वर कँप-कँप कर रह जाएँगे। वे मुखरित नहीं होंगे। वह टूटेगा। निश्चय ही टूटेगा। और उसका टूटना राष्ट्र को तोड़ेगा।

क्या उपाय है व्यक्ति-मन को टूटने से बचाने का? अंधकार से उबार कर प्रकाश में प्रतिष्ठित करने का? उपाय है - उदारता! संकीर्णता का परित्याग। जब व्यक्ति मात्र निज के लिए सोचता है, वह संकीर्ण होता है। अल्प होता है। अल्पता में सुख नहीं है। संकीर्णता ही मनुष्य को तोड़ती है। संकीर्णता मृत्यु है- पीड़ा है-अंधकार है। उदारता में सुख है, जीवन है, प्रकाश है। हमें उदार होना ही होगा। हमें जाना होगा उदारता के मंत्र दाता स्वामी विवेकानन्द की ओर-एक मुट्ठी भोर के लिए, व्यक्ति-मन और राष्ट्रीय-जीवन के प्रकाश के लिए। वे हमें पुकारते हैं "आओ, हम सब प्रार्थना करें, हे कृपामयी ज्योति, पथ-प्रदर्शन करो' - और अंधकार में से एक किरण दिखाई देगी, पथ-प्रदर्शक कोई हाथ आगे बढ़ आयेगा।.. ... जो दारिद्र्य, पुरोहित-प्रपंच तथा प्रबलों के अत्याचारों से पीड़ित हैं, उन भारत के करोड़ों पददलितों के लिए प्रत्येक आदमी दिन-रात प्रार्थना करे। मैं धनवान और उच्च श्रेणी की अपेक्षा उन पीड़ितों को ही धर्म का उपदेश देना पसंद करता हूँ।" फिर वे करुणा से भरकर हमें उपदिष्ट करते हैं-'मैं न कोई तत्त्व-जिज्ञासु हूँ, न दार्शनिक हूँ और न सिद्ध पुरुष हूँ। मैं निर्धन हूँ और निर्धनों से प्रेम करता हूँ-बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? ... उसी को मैं महात्मा कहता हूँ जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है। कौन उनके दुःख में दुःखी है? ..... ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरन्तर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो - प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेगा।"

गायक गा रहा था -

कंठ में उठते नहीं हैं प्रार्थना के स्वर
दूर तक दिखती नहीं कोई किरण भास्वर।

मैं सोच रहा था - ठीक ही तो यह गा रहा है। नहीं उठेंगे प्रार्थना के स्वर तुम्हारे कण्ठ में, अगर तुम अपने निजी सुख-दुःख की सीमा में ही बंधे रहोगे। निजी क्षुद्र सुखों के लिए उठाया गया राग प्रार्थना नहीं है, भीख है। प्रार्थना के मूल में लोक मंगल का भाव है। और जब तक प्रार्थना के स्वर नहीं जगते तब तक दूर - बहुत दूर तक आशा की, प्रसन्नता की, आनन्द की कोई भास्वर किरण दिखाई पड़ नहीं सकती है।

इसलिए प्रकाश चाहते हो तो प्रार्थना करो। प्रार्थना करना चाहते हो तो क्षुद्र अहं से, संकीर्ण 'स्व' से ऊपर उठो। उदार बनो। उदारता प्रेम-प्रीति की सहोदरा है। बिना प्रेम के तुम सुखी नहीं हो सकते। यह व्यक्तिमन और राष्ट्र-जीवन दोनों के लिए आवश्यक है। स्वामीजी कहते हैं - 'प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई-मनुष्य जाति - को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो - ये गरीब, दुःखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं ? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते ? गंगा तट पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो ? प्रेम की असाध्यसाधिनी शक्ति पर विश्वास करो।"

यह प्रेम अर्थात त्याग और उदारता अर्थात् निःस्वार्थता ही हमें सुख-दुख के बन्धनों से मुक्त करती है- हमें सच्चा मनुष्य बनाती है- हमें बुद्ध में परिणत करती हैं। 'जब तुम सुख की कामना समाज के लिए त्याग सकोगे तब तुम भगवान

बुद्ध बन जाओगे, तब तुम मुक्त हो जाओगे'- घोषणा है स्वामीजी की। बिना बुद्ध हुए, बिना मुक्त हुए न अपना हित है न राष्ट्र का मंगल। विश्व-मानव के पूर्ण रूपान्तरण के लिए इसी बुद्धत्व की अपेक्षा है। इसी प्रेम और उदारता की अपेक्षा है। "केवल वही व्यक्ति उत्तम रूप से कार्य कर सकता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायेगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।" यह उद्घोष है स्वामी विवेकानन्द का।

केवल निजी सुख की आकांक्षा एकांत स्वार्थ है।
केवल निजी सुख की कामना पाशविकता है।

एकान्त स्वार्थ और पशुत्व व्यक्ति को विनाश के गर्त में तेजी से ढकेल देते हैं। अतः हमें पशुत्व से ऊपर उठकर 'मनुष्यत्व' की गरिमा और महिमा से मंडित होना होगा। ऐसे ही सच्चे मनुष्यों से भारत का वर्तमान ज्योतित और भविष्य भास्वर होगा। इसी से स्वामी जी ने कहा था -'भारत को कम-से-कम अपने सहस्र तरुण मनुष्यों की बलि की आवश्यकता है; पर ध्यान दो-"मनुष्यों" की "पशुओं" की नहीं।' स्वामीजी की सुदृढ़ धारणा थी कि -'भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जितकर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।"

व्यक्ति का मन टूट रहा है, इसीलिए राष्ट्र में विघटनकारी तत्त्व शिर उठा रहे हैं। बाहर की परिस्थितियाँ जब व्यक्ति के मन को तोड़ती हैं तब व्यक्ति देश और समुदाय में तोड़-फोड़, हत्या, लूट और हिंसा का हथकंडा अपना लेता है। किन्तु दोनों के मूल में है धार्मिक चेतना का अभाव। यदि भारत को तोड़ना है तो इसके मूल से धर्म-भावना को मिटा दो। यह देश स्वयं भरभरा कर गिर जायेगा। यदि भारत को जोड़ना है, इसका पुनर्निर्माण करना है, इसका संवर्द्धन और श्रृंगार करना है तो इस राष्ट्ररूपी वट-वृक्ष के मूल को धर्म और अध्यात्म के ब्रह्म-वारि से, गंगाजल से सींचना ही होगा। कोई अन्य विकल्प ही नहीं है। स्वामी जी ने इस ओर बहुत पहले ही हमारा ध्यानाकर्षण किया था - "मैं अपने अनुभव के बल पर तुम से कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असंभव है। भारतवर्ष का प्राण धर्म ही है, उसके जाने पर भारत नष्ट हो जायगा। अतः भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले आवश्यक है, उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय।'

गायक गाता जा रहा था। ट्रेन बढ़ती जा रही थी। अंधकार कुछ और गहराता जा रहा था। और मैं सोचता जा रहा था- ओ गायक! तू जिस विधाता से एक मुट्ठी भोर माँग रहा है, वह विधाता कहीं दूर नहीं है। वह तेरे पास ही है - तेरा पिता, बन्धु, सखा, मित्र, पथ-प्रदर्शक सब कुछ। वह विधाता हैं - स्वामी विवेकानन्द। तू उनकी आँखों से देखने की दृष्टि पैदा कर, उनकी धड़कनों को सुनने का प्रयास कर, उनकी अमृत वाणी की झंकार को अपने मर्म में बैठने दे, उनकी राह पर चलने की चेष्टा कर और तू देखेगा एक किरण बीज तेरे भीतर अंकुरित हो गया है। तेरे भीतर एक सूर्योदय हो गया है। अंधकार फट गया है। रात ढह गयी है। भोर अवतरित हो चुकी है।

मेरे मित्रो, व्यक्ति मन को निराशा के गहन अंधकार से उबारने और राष्ट्र को एक ज्योति-कलश में रूपायित करने के लिए हमें स्वामी विवेकानन्द की राह पर चलना ही होगा। वे हमारे सबसे निकट के, सबसे अधिक विश्वस्त लोकनायक, आलोक पुरुष हैं। हम उनका साहित्य पढ़ें। उनके साहित्य का प्रचार-प्रसार करें और उनके संदेशों और आदर्शों के अनुसार अपने और राष्ट्र के जीवन का गठन करें, तभी हमारा, आपका और सबका मगंल है। स्वामीजी से मैं प्रार्थना करता हूँ कि वे हम सब को अपनी राह पर चलने की प्रेरणा, शक्ति और सुबुद्धि प्रदान करें जिससे हम सबके जीवन और हमारे राष्ट्र के जीवन और संपूर्ण विश्व-मानव में उतरा अंधकार छटे और आशा, उत्साह, आंतरिक मगंल, सोद्देश्यता और दिव्य चेतना की नयी भोर उतरे।

□

विवेकानन्द उवाच

# संन्यास : उसका आदर्श तथा साधन

१६ जून, सन् १८९९ को जब स्वामी जी दूसरी बार पाश्चात्य देशों को जाने लगे, उस अवसर पर विदाई के उपलक्ष्य में बेलूड़ मठ के युवा संन्यासियों ने उन्हें एक मानपत्र दिया। उसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कहा था, उसका सारांश निम्नलिखित है।

## स्वामी जी का भाषण

यह समय लम्बा भाषण देने का नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं कुछ उन बातों की चर्चा करूँगा, जिनका तुम्हें आचरण करना चाहिए। पहले हमें अपने आदर्श को भली भाँति समझ लेना चाहिए और फिर उन साधनों को भी जानना चाहिए, जिनके द्वारा हम उसको चरितार्थ कर सकते हैं। तुम लोगों में से जो संन्यासी हैं, उन्हें सदैव दूसरों के प्रति भलाई करते रहने का यत्न करना चाहिए, क्योंकि संन्यास का यही अर्थ है। इस समय 'संन्यास' पर भी एक लम्बा भाषण देने का अवसर नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं इसकी परिभाषा इस प्रकार करूँगा कि 'संन्यास' का अर्थ है, 'मृत्यु के प्रति प्रेम'। सांसारिक लोग जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने को मृत्यु है। तो प्रश्न यह उठता है कि क्या फिर हम आत्महत्या कर लें ? नहीं नहीं, इससे बहुत दूर। आत्महत्या करनेवालों को मृत्यु तो कभी प्यारी नहीं होती, क्योंकि यह बहुधा देखा गया है कि कोई मनुष्य आत्महत्या करने जाता है और यदि वह अपने यत्न में असफल रहता है, तो दुबारा फिर वह उसका कभी नाम भी नहीं लेता। तो फिर प्रश्न है कि मृत्यु के लिए प्रेम कैसा होता है ?

हम यह निश्चित जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है, तो फिर किसी सत्कार्य के लिए ही हम क्यों न मरें! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को जैसे खाना-पीना, सोना, उठना, बैठना आदि सभी आत्मत्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे क्या लाभ हुआ, यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण न किया? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो, परन्तु उससे भी कोई लाभ नहीं, यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को लगाकर आत्म-त्याग न किया। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक अत्यन्त अकिंचन अंश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वयं के अभ्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोड़ों भाइयों की सेवा करते रहो।

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

-'सर्वत्र उसके हाथ पैर हैं, सर्वत्र उसके नेत्र, शिर और मुख हैं तथा लोक में सर्वत्र उसके कान हैं वह ईश्वर सर्वव्यापी होकर सर्वत्र विद्यमान है।'- गीता ।।१३/१३।।

इस प्रकार धीरे धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु में स्वर्ग है, उसी में सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमंगल तथा नरक है।

अब हमें यह विचार करना चाहिए कि किन उपायों अथवा साधनों द्वारा हम इन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा आदर्श ऐसा न हो, जो असम्भव हो। अत्यन्त उच्च आदर्श रखने में एक बुराई यह है कि उससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है तथा धीरे धीरे गिरने लगता है। यही हाल बौद्ध तथा जैन सुधारों के बाद हुआ। परन्तु साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक व्यावहारिकता भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि तुममें थोड़ी भी कल्पना-शक्ति नहीं है, यदि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए तुम्हारे सामने कोई भी आदर्श नहीं है, तो तुम निरे जंगली ही हो। अतएव हमें अपने आदर्श को कभी नीचा नहीं करना चाहिए और साथ ही यह भी न होना चाहिए कि हम व्यावहारिकता को बिल्कुल भूल बैठें। इन दो 'अतियों' से हमें बचना चाहिए। हमारे देश में तो प्राचीन पद्धति यह है कि हम एक गुफा में बैठ जाएँ, वहीं ध्यान करें और बस वहीं मर जाएँ, परन्तु मुक्ति-लाभ के लिए यह गलत सिद्धान्त है कि हम दूसरों से आगे ही बढ़ते चले जाएँ, आगे या पीछे साधक को यह

समझ लेना चाहिए कि यदि वह अपने अन्य भाइयों की मुक्ति के लिए भी यत्न नहीं करता है, तो उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अतएव तुम्हें इस बात का यत्न करना चाहिए कि तुम्हारे जीवन में उच्च आदर्श तथा उत्कृष्ट व्यावहारिकता का सुन्दर सामंजस्य हो। तुम्हें इस बात के लिए तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान में मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण (मठ के चरागाह की भूमि की ओर इशारा करके स्वामी जी ने कहा) इन खेतों को जोतने के लिए उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनो कि शास्त्रों की कठिन गुत्थियों को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उसी उत्साह से इन खेतों की फसल को ले जाकर बाजार में भी बेच सको। छोटे से छोटे सेवा-टहल के कार्य के लिए भी तुम्हें उद्यत रहना चाहिए और वह भी केवल यहीं नहीं, वरन् सर्वत्र।

अब दूसरी बात जो ध्यान में रखने योग्य है, वह यह है कि इस मठ का उद्देश्य है, 'मनुष्य' का निर्माण करना। तुम्हें केवल वही नहीं सीखना चाहिए, जो हमें ऋषियों ने सिखाया है। वे ऋषि चले गए और उनकी सम्मतियाँ भी उन्हीं के साथ चली गई। अब तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी वैसे ही मनुष्य हो, जैसे कि बड़े से बड़े व्यक्ति जो कभी पैदा हुए, यहाँ तक कि तुम अवतारों के सदृश हो। केवल ग्रन्थों के पढ़ने से ही क्या होगा? केवल ध्यान-धारणा से भी क्या होगा तथा केवल मंत्र-तंत्र भी क्या कर सकते हैं? तुम्हें तो अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहिए और इस नये ढंग से कार्य करना चाहिए- वह ढंग, जिससे मनुष्य 'मनुष्य' बन जाता है। सच्चा 'नर' वही है, जो इतना शक्तिशाली हो, जितनी शक्ति स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक नारी के सदृश कोमल हो। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं, उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम-भाव होना चाहिए, परन्तु साथ ही तुम लोहे के समान दृढ़ और कठोर बने रहो, पर ध्यान रहे कि साथ ही तुममें आज्ञा-पालन की नम्रता भी हो। मैं जानता हूँ कि ये गुण एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु हाँ, ऐसे ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले गुण तुममें होने चाहिए। यदि तुम्हारे वरिष्ठ तुम्हें इस बात की आज्ञा दें कि तुम नदी में कूद पड़ो और एक मगर को पकड़ लाओ, तो तुम्हारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि पहले तुम आज्ञा-पालन करो, और फिर कारण पूछो। भले ही तुम्हें दी हुई आज्ञा ठीक न हो, परन्तु फिर भी तुम पहले उसका पालन करो और फिर उसका प्रतिवाद करो। हमारे सम्प्रदायों में, विशेषकर बंगीय संप्रदायों में एक विशेष दोष यह है कि यदि किसी के मत में कुछ अन्तर होता है, तो बिना कुछ सोचे-विचारे वह झट से एक नया सम्प्रदाय शुरू कर देता है। थोड़ा सा भी रुकने का उसमें धीरज नहीं होता। अतएव अपने संघ के प्रति तुममें अटूट श्रद्धा तथा विश्वास होना चाहिए। यहाँ अवज्ञा को तनिक भी स्थान नहीं मिल सकता और यदि कहीं वह दिखाई दे, तो निर्दयतापूर्वक उसे कुचलकर नष्ट कर डालो। हमारे इस संघ में एक भी अवज्ञाकारी सदस्य नहीं रह सकता; और यदि कोई हो, तो उसे निकाल बाहर करो। हमारे इस शिविर में दगाबाजी नहीं चल सकती, यहाँ एक भी धोखेबाज नहीं रह सकता। इतने स्वतंत्र रहो, जितनी वायु; पर हाँ, साथ ही ऐसे आज्ञापालक तथा नम्र, जैसा कि यह पौधा या कुत्ता।

□

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां, परोपकारैर्न तु चन्दनेन।।

भावार्थ - करुणा-परायण सज्जनों के कान कुण्डलों से नहीं बल्कि शास्त्र-श्रवण से सुशोभित होते हैं; उनके हाथ कंगनों से नहीं बल्कि दान के द्वारा सुशोभित होते हैं; इसी प्रकार उनका शरीर चन्दन-लेप से नहीं वरन् परोपकार के द्वारा सुशोभित होता है।

- भर्तृहरि (नीतिशतकम्)

# दीन-हीन के प्रभु रामकृष्ण

- स्वामी शशांकानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण परमहंस देव के बचपन का नाम गदाधर था। प्यार से उन्हें 'गदाई' नाम से पुकारा जाता था। उनके जन्म के समय धान कूटने की ढेंकली वाले घर को ही प्रसूति गृह बनाया गया था। प्रसूति गृह में कामारपुकुर गाँव की धनी लुहारिन ने ही प्रसव के समय धाय का कार्य सम्पन्न किया था।

गदाधर ने अपनी धाय माता लुहारपुत्री धनी को माता के समान ही प्यार एवं सम्मान दिया था। वे उन्हें निम्न जाति की मानकर घृणा नहीं करते थे। धनी भी गदाई से अत्यन्त स्नेह करती थी। धनी बड़े यत्न से गदाई के लिए लड्डू आदि मिठाई बनाकर उसके आगमन की प्रतीक्षा करती थी और उनके आने पर उसे खिलाती। भगवान श्रीराम ने जिस प्रकार भीलनी के भक्तिभाव से भींग कर जूठे बेर अत्यन्त प्रेम और आनन्द से खाये थे, उसी प्रकार से भगवान श्रीरामकृष्ण बचपन में पिछड़ी एवं निम्न जाति की इस लुहारिन के घर जाकर उसकी मिठाई खाकर आनन्दित होते रहे थे।

एक दिन धनी ने गदाई से कहा, "गदाई मेरी यह प्रार्थना है कि यज्ञोपवीत के समय सर्वप्रथम तू मेरी भिक्षा को स्वीकार करके मुझे 'माता- कहकर सम्बोधित कर।" दरिद्र महिला धनी की इस अभिलाषा को गदाई ने उसके अकृत्रिम स्नेह से मुग्ध होकर तुरन्त स्वीकार कर लिया। परमात्मा की दृष्टि में धर्म, जाति, पद, आर्थिक-स्तर, ऊँच-नीच का भेद नहीं होता। परब्रह्म परमात्मा नररूप धारण कर गदाधर के रूप में इसी का प्रमाण देने के लिए इस लीला में प्रवृत्त हुए। भगवान तो प्रेम के भूखे होते हैं। धनी के अकृत्रिम प्रेम ने त्रिलोकीनाथ को अपने वश में कर लिया।

बालक गदाई की स्वीकृति पाकर दरिद्र धनी तभी से यथाशक्ति धन संग्रह तथा संचय कर अत्यन्त आतुरता के साथ उस समय की प्रतीक्षा कर रही थी जब वह गदाई के यज्ञोपवीत के समय उसे प्रथम भिक्षा देकर उसके मुख से "माता" सम्बोधन सुनेगी।

जब गदाधर का नवम वर्ष समाप्त होने लगा तो उनके बड़े भाई श्री रामकुमार जी उनके यज्ञोपवीत का आयोजन करने लगे। समय आने पर गदाधर ने अपने अग्रज से यह निवेदन किया कि वे प्रथम भिक्षा धनी माता से लेंगे। किन्तु उनके वंश में ऐसी प्रथा नहीं होने के कारण रामकुमार जी ने आपत्ति की। निम्नजाति की लुहारन कैसे ब्राह्मण पुत्र की भिक्षा माता बने। किन्तु गदाधर का दृढ़ निश्चय था। वह उस निश्चय से तनिक भी न डिगे। उन्होंने रामकुमार जी को समझाते हुए कहा, "दादा! मैंने धनी को वचन दिया है। यदि मैं उससे प्रथम भिक्षा लेकर उसे माता नहीं कहूँगा तो मैं सत्यभंग के अपराध से दोषी हो जाऊँगा। झूठ बोलने वाला व्यक्ति ब्राह्मणोचित यज्ञसूत्र धारण करने का अधिकारी कैसे हो सकता है।"

जिनके पिता ने जमींदार रामानंद राय के क्रोध का शिकार होकर धन-सम्पति, जमीन, घर से वंचित होना स्वीकार किया था पर झूठी गवाही नहीं दी, उन्हीं के पुत्र गदाधर भला कैसे प्रतिज्ञा भंग कर झूठा वचन देने वाले होते।

यज्ञोपवीत का समय अत्यन्त निकट आ पहुँचा, सब आयोजन भी हो चुका था, किन्तु बालक अपनी जिद से टस से मस भी न हुआ। अब तो यज्ञोपवीत कार्य के स्थगित होने की नौबत आ गयी। बड़े भाई रामकुमारजी, कार्य सम्पन्न करने वाला ब्राह्मण समाज, माता चन्द्रामणि सभी चिन्तित एवं विचलित हो उठे। परन्तु गदाधर अपनी सत्यनिष्ठा और निम्नजाति कहाने वाली धनी को माता का स्थान देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे। केवल धनी ही नहीं, धनी के माध्यम से सारे विश्व को वे यह सन्देश देना चाहते थे कि जात-पात, ऊँची-नीच, धनी-दरिद्र आदि मतभेद मिथ्या है। सबके बीच

एक ही वस्तु आत्मा विराजमान है जिसकी न जाति होती है, जो न धनी होता है न गरीब, न ऊँच होता है न नीचा।

अन्त में कामारपुकुर के जमींदार श्री धर्मदास लाहा के समझाने पर रामकुमार जी ने गदाई की बात मान ली। यज्ञोपवीत संस्कार होने पर गदाई ने पहली भिक्षा धनी से लेकर उसे अपनी माता कहर सम्बोधन किया। और इस प्रकार दरिद्र लुहारिन नारी धनी को लक्ष्य कर समस्त जगत की निधर्न, निम्नजाति की नारियों को युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की माता का स्थान मिल गया।

रसिक मेहतर को मोक्ष-दान

भंगी, मेहतर, जमादार आदि जिन लोगों को हम आज भी घृणा के पात्र बनाए हुए हैं, महात्मा गाँधी ने जिन्हें 'हरिजन' नाम से सम्बोधितकर उनके पवित्रीकरण की चेष्टा की थी, श्रीरामकृष्ण ने उन्हीं मेहतरों के शौचालयों को स्वयं साफ करके जगत को अपने हृदय से कुसंस्कारों को नष्ट करने की शिक्षा दी थी।

मेहतर में भी वही ईश्वर विद्यमान है अतः उससे घृणा क्यों करें? उसका पेशा भंगी का हो सकता है, परन्तु यदि उसका हृदय पवित्र हो तो वह भंगी निम्नजाति का होते हुए भी उन उच्च जाति के लोगों से श्रेष्ठ है जो हृदय से अपवित्र होते हैं। रसिक मेहतर पर प्रभु श्रीरामकृष्ण देव ने अहेतुकी कृपा कर उसे वह गति दी थी जो वड़े-बड़े ऋषि मुनियों को भी प्राप्त नहीं होती। घटना इस प्रकार है:

कलकता नगरी से भागीरथी के मनोरम तट पर स्थित सुविशाल देव मन्दिर, विहंगकूजित पंचवटी तथा सुन्दर उपवन से सुशोभित दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर आज असंख्य प्राणियों के लिए दर्शनीय स्थान वन चुका है। यही पावन स्थान कभी श्रीरामकृष्ण देव का साधना-स्थल बना था। विभिन्न साधनाओं में परिपूर्ण हो जब श्रीरामकृष्ण देव में गुरुभाव जाग्रत हुआ तो जैसे कमल के खिलने पर मधुमक्खियाँ स्वयं ही उसके पास मधु लेने के लिए आ जाती हैं, उसी प्रकार साधकगण भी श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में एकत्रित होने लगे। सभी जाति, वर्ण और आयु के स्वदेशी, विदेशी स्वधर्मी और परधर्मी लोगों पर उनकी समान कृपा हुई।

काली मन्दिर से लगभग एक फलाँग दूर एक परम भक्त रहा करता था। उसका नाम था रसिकलाल। रसिक जाति का मेहतर था। दक्षिणेश्वर मन्दिर में झाड़ू-बहारी करके अपना गुजारा करता था। भक्तों की कोई जाति नहीं होती। इससे पूर्व भी इस जाति ने रैदास, दादू, कवीर जैसे भक्तों को जन्म दिया था। ऐसी कहावत प्रसिद्ध भी है-

जाति पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

सो रसिक मेहतर भी सरल, पवित्रहृदय और प्रेमी भक्त था। चाकरी अवश्य करता था परन्तु कार्य को निष्ठा और प्रेम से करता था। मानो उसका विश्वास था कि कार्य प्रभु का है, समय प्रभु का है। इसीलिए उसके लिए धन्धा धन्धा न रहा बल्कि साधना में बदल गया। धन्धा करके जव वह घर लौटता तो समय इधर-उधर न गँवाकर प्रभु-चिन्तन में ही व्यतीत करता।

श्रीरामकृष्ण के प्रति उसका अटूट प्रेम था। वह उन्हें सन्त मानता था या गुरु या कोई देवता अथवा साक्षात् नारायण यह तो वही जाने, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीरामकृष्ण को देखकर वह आनन्द से भर जाता, उसका शरीर रोमांचित हो उठता, हाथ जोड़कर वह उन्हें निहारता रहता तथा प्रेमाश्रु कपोलों पर ढलकते रहते। जब श्रीरामकृष्ण शौचादि से निवृत होने के लिए झाउतला की ओर जाते तो रसिक उनके पदचिन्हों से धूलि उठाकर मस्तक पर रखता हुआ प्रेमानन्द से विभोर हो जाता।

एक दिन जब इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण देव झाऊतला की ओर जा रहे थे तो उन्होंने अचानक पीछे मुड़कर देखा-रसिक उनके पदचिन्हों पर अपना मस्तक रखे हुए है। फिर उसने वहाँ से धूल लेकर अपने माथे पर लगायी और प्रेमभक्ति से पूर्ण रोमांचित देह तथा सजल नेत्रों से श्रीरामकृष्ण की ओर देखा। आज रसिक पकड़ा गया। रोज तो छिपकर प्रणाम करता था, परन्तु आज तो प्रभु ने देख ही लिया। श्रीरामकृष्ण का हृदय करुणा से भर उठा। उनकी मनोहर दिव्य कृपादृष्टि जब रसिक पर पड़ी तो मानो जन्म जन्मान्तर का मैल कट गया और उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। कण्ठ भर आया, मुख से स्वर भी न निकल रहा था।

वह प्रभु के भवताप हरण करनेवाले युगलचरणों से लिपट गया। अश्रुप्रवाह से प्रभु के चरण धुल गये। प्रभु के श्रीचरण ही भक्तों की परम सम्पदा हैं, जिसके कारण संसार-समुद्र गोष्पद-तुल्य हो जाता है। आज रसिक खाली हाथ नहीं लौटेगा, आज तो मौका मिला था। गद्‌गद् कण्ठ से उसने कहा, "ठाकुर! क्या मैं खाली हाथ लौट जाऊँ? क्या मेरा कुछ भी न होगा? क्या मेरा जन्म व्यर्थ ही जायेगा?" और वह उनके चरणों से पुनः लिपटकर रोने लगा। श्रीरामकृष्ण देव ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा, "नहीं, खाली क्यों लौटोगे, रसिक! तुमने यहाँ आनेवाले इतने भक्तों की जो सेवा की है वह क्या कभी निरर्थक हो सकती है? कदापि नहीं! तुम अवश्य ही परमलाभ के अधिकारी होगे।" इस आशीर्वाणी को सुन रसिक आनन्द से झूमता हुआ ठाकुर का जय-जयकार करने लगा। पुनः ठाकुर को प्रणाम कर वह अपने कार्य में लग गया।

इसी प्रकार वह यदा-कदा श्रीरामकृष्ण देव की कृपा प्राप्त करता रहा। उसकी भक्ति भी दिनोंदिन बढ़ती गयी। तुलसीदासजी ने लिखा है -

भगति तात अनुपम सुख मूला ।

मिलइ जो सन्त होइ अनुकूला।।

श्रीरामकृष्ण देव ने १६ अगस्त १८८६ ई. को काशीपुर उद्यानबाटी में महासमाधि ले ली। समाचार सुनकर रसिक को बहुत धक्का लगा। वह भजन-चिन्तन में और भी तल्लीन हो गया। उसकी व्याकुलता बढ़ती गयी। "काह करूँ कित जाऊँ श्याम बिन।" विरहाग्नि बढ़ती गयी। अब तो एक ही बात रसिक को सूझती थी, "किस विधि मिलना होय।" रसिक का स्वास्थ्य गिरने लगा और धीरे-धीरे उसने खाट पकड़ ली। अब तो वह मन्दिर की सफाई के लिए भी न जा सकता था। उसकी कन्या मन्दिर की सफाई कर आती थी। रसिक को उससे ही सन्तोष करना पड़ा।

अन्त में वह दिन भी आया जब रसिक संसार के सारे बन्धन तोड़ अपने प्रभु में विलीन होने के लिए छटपटाने लगा। अन्तिम समय उपस्थित हो गया, परन्तु प्रभु के दर्शन न हुए। विरह-व्यथा ने विकट रूप धारण कर लिया। रसिक को पूर्ण विश्वास था कि श्रीरामकृष्ण देव की आशीर्वाणी निष्फल न होगी। उसने अपने सम्बन्धियों को पास बुला लिया और कहा, "तुम लोग शीघ्र ही अपना खाना-पीना समाप्त कर लो, परन्तु जब तक मैं न बुलाऊँ मेरे पास न आना।" सभी ने तदनुसार किया। रसिक तुलसी के पौधे के पास भगवान् श्रीरामकृष्ण का नाम जपते जपते उनके चिन्तन में डूब गया। देह की सुध न रही। मन तो 'रामकृष्ण'-सुधा का पान करते करते बेसुध हो गया। था। एक ही सुध थी तो वह यही कि प्रभु में कैसे विलीन हो जायें। श्रीरामकृष्ण भले ही स्थूल देह छोड़ चुके थे, परन्तु क्या भक्त की पुकार और विकल प्रार्थना निष्फल होगी? कदापि नहीं! "न मे भक्तः प्रणश्यति" ऐसी प्रतिज्ञा जो उन्होंने की है। तुरन्त प्रभु प्रकट हो गये। ज्योतिर्मय दिव्य अलौकिक रूप देख रसिक पुकार उठा, "प्रभो, तुम आ गये, तुम आ गये, तुम आ गये, तुमने मुझे बिसराया नहीं. ... प्रभो! प्रभो!" और देखते ही देखते प्रभु श्रीरामकृष्ण देव ने रसिक को ज्योति रूप से अपने में समा लिया। भक्त भगवान में लीन हो गया, परन्तु उसकी स्मृति आज भी उत्साहित करती है।

---

मानव-देहमन्दिर में प्रतिष्ठित मानव-आत्मा ही एकमात्र पूजार्ह भगवान् है। अवश्य, समस्त प्राणियों की देह भी मन्दिर है, पर मानव-देह सर्वश्रेष्ठ है- वह मन्दिरों में ताजमहल है। यदि मैं उसमें भगवान् की पूजा न कर सकूँ तो और कोई भी मन्दिर किसी काम का न होगा।

**- स्वामी विवेकानन्द**

१६ फरवरी, आविर्भाव तिथि के अवसर पर

# स्वामी अद्भुतानन्द के जीवन का वैशिष्ट्य

- स्वामी नित्यज्ञानानन्द, बेलुड़मठ

स्वामी अद्भुतानन्दजी युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण की अद्भुत सृष्टि थे। इसीलिए स्वामी विवेकानन्दजी ने उनका संन्यास नाम रखा था स्वामी अद्भुतानन्द। श्री रामकृष्ण उन्हें प्यार से लेटो अथवा लाटू कहकर पुकारते थे इसीलिए भक्तों के बीच वे लाटू महाराज के नाम से ही अधिक परिचित थे।

बिहार प्रान्त के छपरा जिला के अन्तर्गत किसी अज्ञात गाँव का एक अनाथ एवं अनपढ़ बालक किस तरह युगावतार के सान्निध्य में आकर एक महापुरुष के रूप में परिणत हुआ - यह विश्व इतिहास की एक अलौकिक घटना है। इस अद्भुत महापुरुष के दिव्य जीवन का अध्ययन करने पर उनके अन्दर निहित जिन प्रधान वैशिष्ट्यों की ओर हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होता है वे हैं - (१) सरल एवं शुद्ध हृदय, (२) गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति, तथा (३) साधना के प्रति पूर्ण समर्पण। इन तीन महान गुणों की त्रिवेणी उनके जीवन में प्रवाहित हुई थी। यही कारण है कि अनपढ़ एवं अनाथ होने पर भी वे युगावतार रामकृष्ण की कृपा प्राप्त कर महापुरुष बनने में समर्थ हुए थे।

लाटू महाराज अत्यन्त ही सरल एवं शुद्ध प्रकृति के थे। "भगवान मन देखते हैं, कौन क्या कार्य कर रहा है, कहाँ पर पड़ा हुआ है, इसे नहीं देखते", "जो व्याकुल है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, ईश्वर उसी के समक्ष प्रकट होते हैं", "निर्जन में उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, उनके लिए रोना चाहिए, तभी तो उनकी दया होती है" - अपने मालिक रामचन्द्र दत्त के श्रीमुख से ठाकुर श्री रामकृष्णदेव के इन उपदेशों को सुनकर सरल एवं शुद्ध चित्त लाटू ने उसपर सोलह आना विश्वास कर तदनुरूप साधना शुरू कर दी थी तथा तभी से उनके साधक जीवन का श्रीगणेश हुआ था जिसकी परिसमाप्ति पूर्ण अनुभूति में हुई थी। वे इतने सरल थे कि अपनी दुर्बलता की सारी बातें निःसंकोच पूर्वक ठाकुर से बता दिया करते थे। ठाकुर भी अपने इस सरल शिष्य को सरल पथ से ही साधना की उच्च से उच्चतर भूमि पर आरूढ़ कराने लगे। लाटू की सरलता की प्रशंसा ठाकुर ने स्वयं अपने श्रीमुख से की है। हृदयराम (ठाकुर के सेवक तथा भांजे) को जब किसी विशेष कारणवश दक्षिणेश्वर काली मंदिर से निकाल दिया गया था तो ठाकुर को एक सेवक की आवश्यकता पड़ी थी तथा उन्होंने स्वयं एक दिन भक्त रामचन्द्र दत्त से कहा था, "देखो राम, इस लड़के को तुम मेरे पास रख दो। यह लड़का बड़ा शुद्ध सत्त्व है और यहाँ रहना भी पसंद करता है।" उसके बाद से लाटू महाराज युगावतार के सेवक के रूप में दक्षिणेश्वर में ही निवास करने लगे। इतना ही नहीं, एक दिन ठाकुर ने लाटू महाराज को नहवत खाना में माताजी के पास ले जाकर कहा-"यह लड़का बड़ा शुद्ध सत्त्व है। तुम्हें जब जो भी जरूरत हो इसे कहना, यह कर देगा।" उस दिन से लाटू महाराज माताजी की भी सेवा करने लगे।

लाटू महाराज की दूसरी बड़ी विशेषता थी गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति। गुरु के आदेश का अक्षरशः पालन तथा पूरी तत्परता के साथ गुरु की सेवा करना-यह हम उनके जीवन में देखते हैं। एक दिन की घटना है। वे थककर संध्या को ही सो गये थे। यह देखकर ठाकुर ने उन्हें जगाते हुए भविष्य के लिए सावधान कर दिया था - "यह क्या रे? संध्या के समय कैसा सोना? संध्या को कहाँ तो भगवान को पुकारेगा, सो तो नहीं, पड़ा-पड़ा सो रहा है।" ठाकुर की इस भर्त्सना को सुनकर लाटू महाराज ने उसी समय भीष्म प्रतिज्ञा कर ली - "मैं फिर भविष्य में ऐसे समय में कभी नहीं सोऊँगा।" और इस प्रतिज्ञा का अक्षरशः पालन भी उन्होंने आजीवन किया। एक बार वे भीषण निमोनिया रोग से पीड़ित थे। संध्या के समय उन्होंने स्वामी सारदानन्दजी से उन्हें बिठा देने का अनुरोध किया। उनकी अवस्था देखकर

सारदानन्दजी सहमत नहीं हुए तथा किसी कार्यवश अन्यत्र चले गये। फिर क्या था! "तुमलोग यदि मुझे बिठा नहीं दोगे तो मुझे महावीरजी की शरण लेनी पड़ेगी"- यह कहकर लाटू महाराज खुद उठ बैठे। सारदानन्दजी ने लौटकर जब इसका विरोध किया तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं यह सब नहीं जानता। यह उनका (अर्थात् श्री रामकृष्णदेव का) आदेश है और मुझे उनका आदेश मानकर चलना ही होगा।"

गुरुसेवा के बारे में लाटू महाराज ने कहा था, 'गुरु को जिस दिन माता-पिता के समान समझ सकोगे, उसी दिन से उनकी कुछ सेवा में लग सकोगे, उसके पहले नहीं।" गुरुसेवा में उनकी तन्मयता का केवल एक दृष्टान्त देना पर्याप्त होगा। एक बार रात को ठाकुर बिना किसी को कुछ बताये बाहर चले गये। उस दिन पता नहीं क्यों लाटू महाराज का मन जप में नहीं लगा। हृदय में एक रिक्तता का अनुभव करते हुए वे ठाकुर के कमरे में लौट आये। देखा ठाकुर वहाँ नहीं हैं। उन्होंने सोचा कि ठाकुर शौच के लिए गये होंगे, अतः झाऊतला की ओर चल पड़े। थोड़ी देर के बाद ठाकुर ने उसी ओर से आकर कहा,"अरे जिसकी सेवा करेगा, उसे कब किस चीज की आवश्यकता है, इसका ध्यान रखना।" ठाकुर जहाँ कहीं भी जाते अपने एकनिष्ठ सेवक लाटू को अपने साथ ले जाना न भूलते।

लाटू महाराज के जीवन की तीसरी बड़ी विशेषता थी साधना के प्रति पूर्ण समर्पण। रामचन्द्र दत्त के मुख से ठाकुर के उपदेश को सुनने के बाद से साधना की जो अग्नि उनके अन्दर प्रज्वलित हुई थी वह ठाकुर के सान्निध्य में तीव्र से तीव्रतर होती गयी और वह अग्नि आजीवन प्रज्वलित रही। वे जप-ध्यान की प्रतिमूर्ति थे। चाहे वाराहनगर मठ हो या बागबाजार का गंगातट अथवा काशीधाम-सर्वत्र वे सदा सर्वदा जप-ध्यान में डूबे रहते थे; खाने-पीने तक का भी कोई होश-हवाश नहीं रहता था। वाराहनगर मठ में लाटू महाराज कैसा जीवन बिताते थे इसके बारे में स्वामी सारदानन्द जी ने कहा था - "लाटू रात में सोता नहीं है। रात के प्रारंभ में वह नींद का बहाना करते हुए खर्राटे भरता है और सभी के सो जाने पर माला लेकर जप करने बैठ जाता है।" लाटू महाराज की इस समय की अवस्था के बारे में स्वामी रामकृष्णानन्दजी ने कहा है - "लाटू को पुकारकर खिलाना पड़ता था; वरना उसे खाने का होश ही नहीं रहता था। ऐसा कितनी बार हुआ है कि हम सब का भोजन हो चुका है, परन्तु पुकारने पर भी कोई उत्तर न मिलने पर कमरे में ही उसका भोजन पहुँचा दिया गया है। दोपहर बीत गयी, संध्या बीत गयी, रात को उसे पुकारने गया हूँ, पर लाटू उसी प्रकार चादर ताने पड़ा है और दोपहर का भोजन ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है।" बाग बाजार में गंगातट पर जब वे साधना कर रहे थे इस समय की उनकी अवस्था का वर्णन करते हुए गिरीशबाबू कहा करते- "गीता के साधु को यदि देखना हो तो लाटू को देखो।" वे इस समय "स्थितप्रज्ञ" अवस्था में थे, जगत में किसी के भी साथ कोई संबंध नहीं, किसी भी विषय के प्रति राग-द्वेष नहीं, किसी चीज के लिए लोभ-मोह नहीं, उनके मुख से न तो अभिशाप निकलता और न आर्शीर्वाद ही उच्चरित होता। उन दिनों मन को दूसरे ही जगत में रखकर वे केवल पूर्व संस्कारवश लौकिक आचार-व्यवहार आदि कर लेते थे।

अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण ही लाटू महाराज युगावतार की कृपा प्राप्त कर महान बन गये। लाटू महाराज के संबंध में स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था - "लाटू ने जिस प्रकार की परिस्थिति में से आकर थोड़े ही दिनों में आध्यात्मिक क्षेत्र में जितनी प्रगति कर ली है, और हमलोगों ने जिस अवस्था से जितनी प्रगति की है, उन दोनों की तुलना करने पर पता चलता है कि वह हमलोगों की अपेक्षा बहुत महान है। हम सभी का उच्च वंश में जन्म हुआ है। पढ़-लिखकर तथा परिमार्जित बुद्धि लेकर हम ठाकुर के पास आये परन्तु लाटू पूर्णतया निरक्षर था। ध्यान-धारणा अच्छी न लगने पर पठन-पाठन आदि के द्वारा हमलोग मन के उस भाव को दूर कर लेते थे, परन्तु लाटू का कोई दूसरा अवलम्बन नहीं था। उसे तो सिर्फ एक ही भाव का सहारा लेकर चलना पड़ता था। केवल ध्यान-धारणा की सहायता से ही लाटू अपना मस्तिष्क ठीक रखकर अति निम्न अवस्था से उच्चतम आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकारी हुआ है- इससे उसकी अन्तर्निहित शक्ति तथा उसके प्रति ठाकुर की असीम कृपा का परिचय प्राप्त होता है।"

महाशिवरात्रि : ४ मार्च

# शिव और उनका रूप

\- विश्वनाथ सिंह

शैवों के अनुसार शिव परमात्मा हैं। शिवकी गणना वैदिक देवताओं में नहीं की जाती। सिन्धु घाटी के निवासी एक ऐसे देवता की पूजा करते थे, जिसमें शिव जैसे कई लक्षण मौजूद थे। बाद में वैदिक देवता रूद्र और सिन्धु घाटी के उस देवता को शिव मान लिया गया।

शिव आदि देव हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद' में उनके विषय में कहा गया है - सृष्टि के आदिकाल में जब अन्धकार ही अन्धकार था, न दिन था न रात, न सत् था न असत् तब केवल एक निर्विकार शिव (रुद्र) ही थे। 'महाभारत' के 'अनुशासन पर्व' में तो उन्हें ब्रह्मा तथा विष्णु का स्रष्टा भी कहा गया है। इसीलिए वे देवों के देव अर्थात् महादेव कहलाते हैं।

महाभारत एवं वाल्मीकि रामायण के काल तक आते-आते वेदों में वर्णित रुद्र पूर्ण रूप से शिव हो गये। राम द्वारा लंका विजय के लिए सेतुबन्ध रामेश्वरम पर शिव पूजन प्रसंग तथा महाभारत काल में अर्जुन को किरात-रूप में दर्शन देने से जुड़े शिव के कई आख्यान प्रचलित हैं। मध्यकाल में तो उनका इतना अधिक प्रभाव हो गया कि वैष्णव सम्प्रदाय की भांति शैव सम्प्रदाय भी प्रचलित हो गया और उससे भी काल्पनिक लिंगायत आदि अनेक रूप प्रचलित हो गये।

एकाकी शिव का स्वरूप प्रायः योगी रूप में ही मिलता है। उनका यह रूप अत्यन्त विलक्षण है। उनकी घनी और गुंथी जटाएं सर्वव्यापकता की द्योतक है। उन जटाओं में स्थित चन्द्रमा अमृत या शीतलता का एवं गंगा कलुष के विनाश का प्रतीक है। सर्प काल स्वरूप है, जिसपर विजय प्राप्त करके वे मृत्युंजय बने। त्रिपुंड एवं त्रिनेत्र योग की तीनों नाड़ियों-सुषुम्ना, इड़ा तथा पिंगला और आज्ञाचक्र के सूचक हैं।

उनका त्रिशूल शारीरिक, प्राकृतिक एवं भौतिक कष्टों के विनाश अथवा सात्विक, राजसिक एवं तामसिक गुणोंपर विजय का प्रतीक है। डमरू उस ब्रह्मनादका सूचक है, जिससे समस्त वाङ्मय निकला है। कमण्डलु समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। बाघ की खाल मनकी चंचलता के दमन की सूचिका है। उनका वाहन नन्दी (वृष) धर्म का द्योतक है, जिसपर वे सदा सवार रहते हैं उनके शरीर पर लगी भस्म संसार की नश्वरता को सूचित करती है।

शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप शिव और पार्वती का समन्वित स्वरूप है। शैवागमों तथा शैव पुराणों में कहा गया है कि शक्ति अथवा उमा के विना शिव शव के समान हैं। अर्द्ध नारीश्वर की कल्पना अति प्राचीन है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस अण्ड से सृष्टि की उत्पति हुई, उसका आधा भाग पुरुष था एवं आधा भाग स्त्री का था।

शैव दार्शनिक शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप को वस्तुतः ब्रह्म एवं आत्मा का समन्वित रूप मानते हैं। दूसरे रूप में शिव का रूप द्वैतवादका ही एक रूप है। इस स्वरूप में शिव का अर्द्ध दाहिना भाग पुरुष का एवं अर्द्ध वायां भाग पार्वती का होता है। शिव वाले भाग में सिर पर जटा जूट के अतिरिक्त सर्पमाल, सर्पयज्ञोपवीत, सर्पकुण्डल, अक्षमाल (रूद्राक्षकी माला), बाघ, चर्म, त्रिशूल एवं कमण्डलु इत्यादि रहते हैं।

पार्वती वाले भाग में सिरपर किरीट-मुकट के अतिरिक्त कुण्डल, सुन्दर वस्त्र, कंकण तथा हाथों में दर्पण एवं पैरों में नूपुर या महावर होते हैं। हरिहर रूप में विष्णु तथा शिव का समन्वय होता है। विष्णु पुराण में एक स्थान पर शिव को अपने ही मुख से यह कहते हुए बताया गया है कि वे विष्णु के ही अर्द्ध भाग हैं और विष्णु से अलग उनका कोई अस्तित्व नहीं है।

एकाकी शिव का स्वरूप प्रायः योगी रूप में ही मिलता है। उनका यह रूप अत्यन्त विलक्षण है। उनकी घनी और गुंथी जटाएं सर्वव्यापकता की द्योतक है। उन जटाओं में स्थित चन्द्रमा अमृत या शीतलता का एवं गंगा कलुष के विनाश का प्रतीक है। सर्प काल स्वरूप है, जिसपर विजय प्राप्त करके वे मृत्युंजय बने। त्रिपुंड एवं त्रिनेत्र योग की तीनों नाड़ियों-सुषुम्ना, इड़ा तथा पिंगला और आज्ञाचक्र के सूचक हैं। उनका त्रिशूल शारीरिक, प्राकृतिक एवं भौतिक कष्टों के विनाश अथवा सात्विक, राजसिक एवं तामसिक गुणोंपर विजय का प्रतीक है। डमरू उस ब्रह्मनाद का सूचक है, जिससे समस्त वाङ्मय निकला है। कमण्डलु समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है।

# महाराष्ट्र गुरु : श्री समर्थ रामदास

- श्रीमती नलिनी कुलकर्णी, पुणे

मध्ययुग में महाराष्ट्र में पाँच महान सन्त हो गये। उनमें ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम ये चार भागवत् धर्म के प्रचारक थे। पाँचवें रामदास स्वामी इनसे अलग थे। रामदास स्वामी को राष्ट्रीय संत माना जाता है। उन्होंने श्रीरामचन्द्र के अनेक मंदिरों की स्थापना करके हरिकथा निरूपण को आधारभूत मानकर उसके माध्यम से राजनीति तथा समाज संघटन का कार्य किया। देश-कालानुसार पुरानी बातों को नये संदर्भ में तथा विवेक के साथ नये ढाँचे में ढालकर लोगों के सामने उपस्थित करना पड़ता है। स्वामी समर्थ ने यही किया।

रामदास स्वामी का जन्म जांब गाँव में चैत्र शुक्ल 'रामनवमी संवत् १५३० में अपरान्ह काल में हुआ था। पिता का नाम सूर्याजी तथा माँ का नाम राणूबाई था। एकनाथ महाराज उनके मौसाजी थे। छोटे रामदास ने एकनाथ महाराज की समाधि की दर्शन किये थे। रामदास स्वामी का नाम नारायण था। नारायण बचपन में बड़ा शरारती था। लेकिन बुद्धिमान था। आठ वर्ष की उम्र में पिता की छत्रछाया से वह वंचित हुआ। बारह वर्ष की उम्र में उन्होंने रूपावली, समाजचक्र, अमरकोश, रुद्र, पवमान आदि का अध्ययन किया। छोटे नारायण ने अपने बड़े भाई से मंत्रदीक्षा की माँग की। लेकिन छोटी उम्र के कारण उन्हें मंत्रदीक्षा नहीं दी। छोटा नारायण रूठकर गाँव के बाहर हनुमान मंदिर में जाकर सो गया। कहा जाता है स्वयं श्रीरामचन्द्र ने नारायण को उठाकर मंत्रदीक्षा दी। लेकिन उनका चुलबुलापन बढ़ता ही गया। माँ को इसी की चिन्ता रहती। माँ और भाई ने सोचा कि यदि इसका विवाह किया जाय तो यह शान्त होगा और अपनी जिम्मेदारी सम्हालेगा। जब नारायण ने अपने विवाह की बात सुनी तो उसने विरोध किया लेकिन माँ ने उसे कसम देकर कहा 'बेटा मंगलाष्टक शुरू होने तक ना न कहना।' कुछ सोच विचार कर नारायण ने माँ का कहना मान लिया। विवाह धूमधाम से होने लगा। मंगल गीत गाने लगे। 'शुभमंगल सावधान' सुनते ही उसे भयसूचक संकट का इशारा मानकर वह खचाखच भरे लग्नमंडप से भाग गया। ग्यारह दिन में नारायण नासिक के पास टाकली पहुँचा।

१६२० ईसवी से १६३२ ईसवी तक, लंबे बारह वर्ष नारायण ने कठोर तपस्या की। सूर्योदय के पहले से दोपहर के बारह बजे तक गोदावरी नदी के जल में खड़े रहकर रामनाम का जाप करना। उन्होंने तेरह कोटि रामनाम जाप किया तथा गायत्री पुरश्च किये। भिक्षा माँगकर भोजन करना तथा पैदल नासिक जाकर वहाँ के विद्वान पंडितों से वेद, उपनिषद का अध्ययन करना। उसके उपरान्त कथा-कीर्तन श्रवण यही उनका दिनक्रम रहा होगा।

यह तपःपूत पच्चीस साल का तेजस्वी युवक देश का तथा देशवासियों का परीक्षण-निरीक्षण करने टाकली से निकला। इस भ्रमंती में बल और भक्ति के देवता हनुमान महावीर के ग्यारह मंदिरों की स्थापना की। टाकली के हनुमान प्रथम स्थापित हुए। काशी, गया, प्रयोग, गोकुल, वृन्दावन, मथुरा होकर वे अयोध्या आये। अपने इष्ट के स्थान में वे सालभर रहे। अनंतर हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्री केदार और बद्रीनारायण गये। कहा जाता है कि हिमालय यात्रा में स्वयं श्वेत हनुमान जी ने उन्हें टोप, वल्कल, वस्त्र मेखला, खड़ाऊँ, बैसाखी, जयमाला दी कि जिससे उन्हें शीतबाधा न हो। दक्षिण की यात्रा करते हुए वे महाराष्ट्र आये। माँ से मिलने वे पच्चीस साल बाद अपने घर जांब गये। माँ तो रोकर अंधी हो गयी थी। घर आकर हमेशा की तरह नारायण ने कहा, माँ मैं आया हूँ।' नारायण माँ के पास गया तब माँ ने उसे स्पर्श किया और वह जान गयी कि वह उसका नारायण ही है। नारायण तपःपूत होकर समर्थ मन गये थे। उन्होंने माँ की आँखोंपर हाथ फिराकर उसे दृष्टि प्रदान की। माँ ने आश्चर्य विभोर होकर पूछा 'नारायण तुझे किस भूत ने पकड़ लिया है? उन्होंने कहा कि 'मुझे राम के भूत ने बाँध लिया है। 'उन्होंने माँ पर कृपा करके उसे ज्ञान प्रदान किया और शोक मुक्त किया।

१६४४ ईसवी में वैशाख मास में समर्थ गोदातटा को छोड़कर नर्मदा तटपर आये। अनेक स्थानों की परखकर उन्होंने चापुल की वादी में ही रहना पसंद किया। वहां अपने हेतु पूर्ति के लिये राममंदिर की स्थापना की। १६४७ ईसवी में पानी में उन्हें श्रीराम की मूर्ति प्राप्त हुई। कुछ जमीन प्राप्त हुई। उन्होंने अपना कार्य और कार्यक्षेत्र निश्चित किया।

समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। इस्लाम के भयंकर आक्रमण ने सर्वत्र कत्लेआम, लूटमार, मंदिरों की तोड़-फोड़, बलात्कार, जुल्म-जबरदस्ती से धर्मान्तर कराना इसका हो-हल्ला मचा था। लोगों का जीवन ध्वस्त हो गया था। जो प्रपंच ही नहीं कर पा रहे थे वे लोग अध्यात्म क्या जान सकें। इस चित्र को बदलने का निश्चय रामदास स्वामी ने किया। लोक जागृति तथा लोग प्रबोधन के लिये उपासक के लिये सूचना, उपासना, रूपासना इस मंत्र का अखंड संदेश देने के लिये धनुर्धारी श्रीराम तथा बलसागर हनुमान का आदर्श लोगों के सामने रखा।

'शक्ति से राज्य प्राप्त होता है', 'पहले कार्य करना जरूरी है', करने से सबकुछ प्राप्त होता है, प्रयत्न ही भगवान है' इन विचारों को लोगों के सामने उन्होंने प्रस्तुत करना शुरू किया। सूत्रबद्ध कार्य के लिये संघटना की आवश्यकता होती है यह ध्यान में रखकर वाडमय निर्मिति की। कल्याण, दिनकर, दिवाकर, दत्तात्रेय, वासुदेव जैसे कर्मनिष्ठ तथा विद्वान शिष्य एकत्रित हुए। अक्काबाई, वेणाबाई, शिष्या हुईं।

महाराष्ट्र के निर्माता, शास्ता राजाधिराज शिवाजी और महाराष्ट्र के गुरू रामदास स्वामी की भेंट हुई थी इसके बारे में सबका एकमत है। कब हुई इसमें एकमत नहीं। लेकिन शिवराज्याभिषेक के पूर्व दो ही साल रामनवमी के उत्सव में चैनूर में हुई थी। इस प्रथम भेंट में ही रामदास स्वामी ने उनपर अनुग्रह किया और 'राजधर्म' तथा 'क्षात्रधर्म' ये दो प्रकरण लिखकर उपदेश दिया। कहा जाता है कि उसके बाद तीव्र वैराग्य के कारण शिवबाने सारे राज्य का दानपत्र अपने गुरू का झोली में डाल दिया। रामदास स्वामी ने 'हमारा राज्य तुम करो, तथा उसका चिन्ह गेरूआ पताका धारण करो' कहा। इस प्रकार दो स्वतंत्र क्षेत्र के निश्चयी तथा शक्तिमान पुरुष श्रेष्ठों ने एकरुप होकर दुर्जनों का संहार, सज्जनों का पालन तथा धर्मसंस्थापना का अपना स्वप्न साकार किया। शिवबाकी शक्ति तथा रामदास स्वामी के मार्गदर्शन के कारण हिन्दूपतपातशाही का निर्माण हुआ। यही मानो ईश्वरी संकेत था।

समर्थ रामदास स्वामी की ग्रंथ रचना संजीवक है। मनके श्लोक करूणाष्टक ये अत्यंत उद्‌बोधक तथा गेय श्लोक हैं, जो उत्तर भारत की तुलसीरामायण की तरह घरघर में गाये जाते हैं। 'दासबोध' यह ग्रंथराज उनका शरीर है ऐसा उन्होंने स्वयं कहा है। दासबोध में व्यक्ति, परिवार, प्रपंच, समाज, सामाजिक संबंध, राजकारण आदि सारे विषयों को सुंदर लेकिन फक्कडी भाषा में प्रस्तुत किया है। उन्होंने दासबोध की प्रस्तावना में स्वयं कहा है 'यह ग्रंथ गुरूशिष्य का संवाद है। इसमें नवधा भक्ति तथ ज्ञान का विवेचन, वैराग्य लक्षण हैं।" यही ग्रंथरचना का उद्देश्य तथा फलश्रुति है। उन्होंने स्फुट काव्य रचना भी की है। इनमें 'धावरे श्रीरामा' 'हे श्रीराम दौड़ के आओ', 'कल्याण करो रामराया' इत्यादि।

उनकी कार्य पद्धति संघटना के रूप में थी अतः उन्होंने मठ, महंत और संप्रदाय की स्थापना की। एक सुनिश्चित कार्यक्रम उनके लिये तैयार किया। भागवत धर्म ने भगवत् भक्ति को प्रधान्य दिया और रामदास स्वामी के राष्ट्रधर्म ने समाजोद्धार को प्रमुख्ता दी।

अंतिम चार वर्ष समर्थ का वास्तव्य परली के किले पर था। जीवनभर स्वयं निर्मित इस समाज और राष्ट्र का प्रपंच उन्होंने समेटना शुरू किया। माघ कृष्ण नवमी को जमीनपर उत्तराभिमुख होकर आसनस्थ हुए, त्रिवार श्रीराम नाम का उच्च स्वर में उद्‌घोष किया और योग मार्ग से सज्जन गढ़ पर समाधिस्थ हुए यह १६८१ की घटना है।

इस प्रकार अपने स्वातंत्र, तेजस्वी, यशस्वी जीवन से, चारित्र्य तथा अक्षर ग्रंथरचना से, अलौकिक कार्य से, अद्‌भुत संघटना चातुर्य से स्वयं को अति विनम्रता से 'राम का दास' कहलाने वाले 'समर्थ' केवल महराष्ट्र के ही गुरु थे सो नहीं, वे सर्वार्थ से 'राष्ट्रगुरु' थे।

।। हरिः ॐ तत् सत् ।।

# किमाश्चर्यम्

- स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़

पांडवों के बारह वर्ष के वनवास के समय एक दुर्घटना घटी थी। एक दिन जंगल में बहुत समय तक पानी के अभाव के कारण पाण्डव एवं द्रौपदी प्यास से व्याकुल हो गये। पानी खोजने के लिये युधिष्ठिर ने एक के बाद एक अपने चारों भाइयों को भेजा। जब उनमें से कोई नहीं लौटा, तो स्वयं युधिष्ठिर उन्हें तथा जल को खोजते हुए एक सरोबर के निकट पहुँचे जिसके किनारे उन्होंने अपने चारों भाइयों को मृत पाया। विलाप करते, पानी पीने के लिये अग्रसर होने पर उन्होंने एक आवाज सुनी, एक यक्ष की, जिसने उन्हें उसके प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व पानी पीने से मना किया। यक्ष और युधिष्ठिर के ये प्रश्नोत्तर महा-भारत में 'यक्ष-प्रश्न' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन प्रश्नों में एक प्रश्न था, "किमाश्चर्यम्" अर्थात् संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? और युधिष्ठिर का प्रसिद्ध उत्तर है-

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।।

अर्थात् प्रतिदिन प्राणी मर रहे हैं, लेकिन फिर भी जो वचे हुए हैं, वे चिरजीवित रहना चाहते हैं। इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है?

यह सबसे वड़ा आश्चर्य ही नहीं, सबसे बड़ी विडम्वना, सवसे वड़ा दुर्भाग्य भी है। हम स्वयं की ही बात लें। क्या हमने प्रतिदिन लोगों को अपने आसपास मरते नहीं देखा है? क्या हमारे सगे-संवंधी मरे नहीं हैं? वृद्ध ही नहीं, हमारे जवान मित्रों, संवंधियों में से भी तो किसी-न-किसी की अकाल-मृत्यु हुई है। जिसके साथ कल तक बातचीत की थी, हँसी-मजाक किया था, मोटर-दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी। अथवा ऐसा भी तो हुआ होगा, कि आप मोटर से जा रहे हैं, आपके आगे कोई अन्य मोटर जा रही है, आपके देखते-ही-देखते वह ट्रक से टकरा गयी। भीतर वैठे लोग मारे गये। मृत्यु आपसे कितनी दूर थी? केवल कुछ ही गज, कुछ मिनट दूर, बस! अगर आगे वाली मोटर के स्थान पर आप उस समय पहुँचे होते तो?

और दुर्घटनाएँ तो सभी के जीवन में घटी हैं। सड़क चलते किसी मोटर या स्कूटर से धक्का लग गया- हम गिर गये, खरोंच लगी या हड्डी टूट गयी। कुछ दिनों में ठीक हो गये। लेकिन अगर धक्का अधिक जोरदार होता, स्कूटर के बदले मोटर से टक्कर हुई होती, तो? यहाँ भी मृत्यु हमारे कितने निकट से होकर गुजर गयी? या फिर अस्पताल में भर्ती हुए, पेट में दर्द हुआ, ऑपरेशन करना पड़ा, हम अच्छे हो गये, पर यदि ऑपरेशन करने में देर हो जाती? यदि ऑपरेशन असफल हो जाता? या फिर ऐसा भी तो हुआ होगा कि हम वार्ड-भर्ती हुए, हमारे पास के विस्तर वाला रोगी मर गया- हम बच गये। मृत्यु हमारे कितने निकट से गुजर गयी। बस अपनी एक झलक दिखाकर, खरोंचती हुई सी चली गयी। आयी थी वह एक सन्देश देने, अपनी याद दिलाने, जीवन के साथ अपनी भी सत्यता की स्मृति कराने। पर क्या हमने सुना उसका संदेश? जागे विस्मृति की नींद से? नहीं। इससे बड़ा और क्या आश्चर्य हो सकता है? कैसी विडम्बना, कैसा दुर्भाग्य ?

आप कहेंगे, यह तो घोर निराशावादी दृष्टिकोण है। बाल-बाल बच गये, तो प्रसन्न होना चाहिए, शुक्र करना चाहिए अल्लाह का, कि उसने बचा लिया और आप कहते हैं, कि मृत्यु की सोचें। ऐसी घटनाएँ तो आये दिन होती रहती हैं, अगर उन सभी को इतनी गंभीरता से लेंगे, तो जीना ही दूभर हो जायेगा। तब फिर तो वस हाथ पर हाथ रखे, सिर झुकाये, मुरझाये चेहरे को लेकर बैठे रहना होगा।

नहीं, यह बात नहीं है। यथार्थ को स्वीकारना निराशावाद नहीं है। लेकिन सुख एवं जीवन के प्रति हमारी तीव्र आसक्ति, हमें दुःख और मृत्यु के सत्य को स्वीकारने, पहचानने नहीं देती। दुःख और मृत्यु का अत्यधिक चिंतन। उसे अत्यधिक महत्त्व देना भी उतना ही अहितकर या अस्वास्थ्यकर है, जितना सुख और जीवन को ही पकड़े रहने का प्रयत्न। इन दोनों को समान रूप से सत्य जानकर, उसके परे जाना ही लक्ष्य है।

मृत्यु को न पहचानना, अथवा यह न समझना कि मुझे भी मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा बौद्धिक संवेदनविहीनता का लक्षण है। मरना कोई भी नहीं चाहता। अमरत्व की इच्छा सभी प्राणियों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हम मृत्यु से आँखें मूँद लें। मृत्यु को स्वीकार कर उसको जीतने का उपाय साहसपूर्वक खोजना होगा। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि सदा मृत्यु का चिंतन करो, क्योंकि यह तुम में महान साहस और शक्ति का संचार करेगा।

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये

आइए, अब ऐसे कुछ महापुरुषों के दृष्टांत देखें जिन्होंने मृत्यु के संबंध में प्रश्न कर, उसका सीधा सामना करके उस पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया था।

प्रथम दृष्टान्त, भगवान् बुद्ध को लें। उनके स्वयं के जीवन में तो मृत्यु नहीं आयी, न ही उनके किसी सगे-संबंधी की मृत्यु हुई, लेकिन उन्होंने एक मृत व्यक्ति को देखा अवश्यं यही उन्हें झकझोरने में, विस्मृति की निद्रा से जगाने के लिए पर्याप्त था। उनके मन में प्रश्न जागा, क्या मेरी भी मृत्यु होगी? क्या मेरी प्रियतमा यशोधरा भी नहीं रहेगी? बुद्ध का संवेदनशील मन इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठा। उन्होंने सब कुछ त्याग कर कठोर तपस्या द्वारा मृत्यु ही नहीं समग्र आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक दुःखों पर विजय पाने का मार्ग खोज निकाला।

वृहदारण्यक उपनिषद् में 'याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद' नामक एक प्रसिद्ध प्रसंग है। ब्रह्म ऋषि याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने का निश्चय करके अपनी दो भार्याओं के बीच धन-सम्पत्ति का बँटवारा कर देना चाहते हैं। उनकी एक पत्नी मैत्रेयी इस आसन्न-वियोग से विचलित हो प्रश्न करती है कि क्या इस वित्त से मैं अमर हो सकूँगी? याज्ञवल्क्य कहते हैं, कि धन से तुम सुखी जीवन व्यतीत कर सकोगी, लेकिन वित्त से अमृतत्व की किंचित-मात्र भी आशा नहीं है। 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति।" इस पर मैत्रेयी कहती है, कि जिससे मैं अमर न होऊँ, उसका मैं क्या करूँगी? भगवन्, आप इस विषय में जो जानते हैं, वह कृपया मुझे बताएं। प्रसन्न होकर याज्ञवल्क्य कहते हैं, कि पहले भी तुम हमारी प्रिया थी, अब तुम प्रियतर वचन कह रही हो। आओ, बैठो, मैं तुम्हें कहता हूँ, तुम इस पर विचार करना।

और हमारे युग में रमण महर्षि का दृष्टांत भी सर्वविदित है। युवक वेंकटरमण को मृत्यु-भय ने अभिभूत कर लिया। उन्होंने अपने आप को मृत के रूप में सोचा। देह को मृत-सम डाल दिया और विचार करने लगे। - मृत्यु किसकी हुई है। यदि देह मृत है, तो मैं कौन हूँ, इत्यादि और वे अपने स्वरूप का साक्षात्कार करने में सफल हुए।

कठोपनिषद् में नचिकेता की अत्यन्त सुन्दर कथा है। इसके पिता ने एक ऐसा यज्ञ करने का संकल्प किया, जिसमें सर्वस्व का त्याग करना होता है। लेकिन वे ऐसा न करके, केवल अपनी ऐसी वृद्ध गायों का ही दान करने लगे, जो दूध नहीं देती थी। नचिकेता ने जब यह देखा, तो शास्त्रों के कथन में श्रद्धायुक्त हो उसने सोचा कि ऐसा झूठा यज्ञ करने वाला तो नर्क में जाएगा। पिताजी को यह समझाने के लिए उसने उनसे कहा कि वे उसे किसे दे रहे हैं? जब बालक बार-बार यह कहने लगा तो पिता ने क्रुद्ध होकर कहा कि जा, मैं तुझे यमराज को देता हूँ। कथा आगे बढ़ती है - निर्भीक बालक यम के दरवाजे पर पहुँच जाता है। यमराज उसे तीन वर प्रदान करते हैं। तीसरे वर के रूप में नचिकेता उनसे पूछता है -

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽसतीत्येके नायमस्तीत्येके।

एतत् शिक्षा अनुशिष्यस्त्वयाऽहं वराणमेष वरस्तृतीय।।

अर्थात् कुछ लोग कहते हैं, कि मरने के बाद मनुष्य नहीं रहता, कुछ कहते हैं कि वह रहता है। इस प्रश्न का उत्तर मैं आपसे चाहता हूँ। यही मेरा तीसरा वर है।

इसके उत्तर में यमराज कहते हैं कि यह प्रश्न बड़ा जटिल है। देवताओं ने भी यह पहले पूछा था, पर जान न सके। तुम और कुछ माँग लो। चाहो तो दीर्घ आयु, धन-सम्पत्ति, स्वर्ग के भोग, पुत्र-पौत्र आदि, जो चाहो माँग लो, पर यह प्रश्न न पूछो। नचिकेता विचलित नहीं हुआ, प्रलोभित नहीं हुआ, उसने कहा कि चिर-जीवन भी आपके रहते अल्प ही हैं, इन्द्रियों का तेज क्षीण हो जाता है, कोई व्यक्ति धन से आज तक तृप्त नहीं हुआ है। इन सब इन्द्रिय सुख-भोग की वस्तुओं को आप ही रखिए। मुझे आप मृत्यु का रहस्य बताइए। नचिकेता के विवेक और वैराग्य से

अत्यन्त प्रसन्न हो यमराज उसे मृत्यु का रहस्य तथा आत्मा का स्वरूप बताते हैं, जो कठोपनिषद में लिपिबद्ध है।

मृत्यु का रहस्य तथा मृत्यु पर विजय पाने का उपाय भगवान् बुद्ध के उपदेशों में, याज्ञवल्क्य द्वारा मैत्रेयी को वृहदारण्यक उपनिषद् में दी गयी शिक्षा में, रमण महर्षि के उपदेशों में तथा कठोपनिषद् में वर्णित, यम-नचिकेता संवाद में पाया जा सकता है। किन्तु उन्हें पढ़ लेने मात्र से हम मृत्यु पर तब तक विजय प्राप्त नहीं कर पाएँगे, जब तक हम बुद्धादि की मनः स्थिति का अपने में निर्माण नहीं कर लेते। यदि हमारा मन भोग्य इन्द्रिय-विषयों की ओर आकृष्ट होता है, यदि हम धन के लोभी हैं तथा पुत्र-पौत्रादि के प्रति आसक्त हैं, तो हम नचिकेता की तरह यमराज के उपदेश सुनने के अधिकारी नहीं हैं। सुनकर-पढ़कर भी हम उनसे लाभ नहीं उठा पाएंगे। बुद्ध के-से त्याग के बिना, नचिकेता के-से विवेक वैराग्य और प्रलोभनों से विचलित नहीं होने की क्षमता के बिना तथा मैत्रेयी की सी तीव्र एकाग्रता, पतिपरायणता के बिना चित्त शुद्ध नहीं होता और चित्त शुद्ध हुए बिना मृत्यु के पार जाने की उत्कट-अभिलाषा मन में नहीं जगती। यही कारण है कि आध्यात्मिक जीवन में त्याग, वैराग्य, संयमादि अनेक उपायों पर अत्यधिक बल दिया गया है। तो, पहली आवश्यकता तो यह है कि हम प्रयत्लपूर्वक अपने मन को पवित्र और एकाग्र करें, जिससे वह मृत्यु के विषय में जिज्ञासा करने तथा उस जिज्ञासा को बनाये रखने में समर्थ हों।

## मृत्यु पर विजय

मृत्यु के विषय में प्रश्न करने वाले लोगों के उपर्युक्त दृष्यंतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे महापुरुष भी हैं, जिन्होंने मृत्यु पर साक्षात् विजय प्राप्त की थी। भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान प्राप्त था और वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में शरशय्या पर उत्तरायण की प्रतीक्षा करते हुए सोये रहे, तथा उत्तरायण के लगने पर उन्होंने सज्ञान मृत्यु का वरण किया। मृत्यु को रोके रखने का ऐसा दृष्टांत विश्व के इतिहास में विरल ही है। दूसरा दृष्टांत स्वामी विवेकानन्द हैं, जिन्होंने अपनी अमरनाथ यात्रा के समय अमरनाथ शिव से इच्छा-मृत्यु का वरदान प्राप्त किया था और अल्प-आयु में ही मृत्यु का स्वेच्छापूर्वक वरण किया था।

लेकिन हम सामान्य मानवों के लिए इस प्रकार अपनी भौतिक देह की मृत्यु को अपने हाथ में लेना संभव नहीं है। हमें तो मृत्यु के स्वरूप को समझना होगा और इसके लिए आइए, यमराज द्वारा नचिकेता को दिये गये उत्तर का अवलोकन करें।

नचिकेता को यमराज ने क्या उत्तर दिया था? मृत्यु के बाद जीव रहता है या नहीं? अगर हम इस प्रश्न का उत्तर यानि मृत्यु का रहस्य जान पाएँ, तो हम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि ज्ञान ही शक्ति है, बल है। नचिकेता को यमराज ने बड़ा मजेदार उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि तुम्हारा प्रश्न बहुत गहन है, उसका सीधा उत्तर ही नहीं दिया जा सकता। क्यों? क्योंकि आत्मा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु। अतः जहाँ मृत्यु ही नहीं, वहाँ मृत्यु के विषय में प्रश्न ही कैसा ?

न जायते म्रियते वा विपश्चित
नायं कुतश्चित न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

यह हमारी अजन्मा, नित्य शाश्वत, पुरातन आत्मा शरीर के मरने पर मरती नहीं। मरता तो शरीर है। और इस शरीर को ही आत्मा या 'मैं' मानकर हम मृत्यु से घबड़ाने लगते हैं। यही नहीं इस देह को ही आत्मा समझकर, नित्य और अमर समझकर हम अपने जीवन के सारे क्रिया-कलाप करते रहते हैं। विषयों की ओर दौड़ते हैं। देह से संबंधित माता-पिता पति-पत्नी, पुत्र-पौत्र आदि के साथ आसक्त होते हैं और असंख्य दुःख प्राप्त करते हैं। मृत्यु के भय से छुटकारा पाने के लिए, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए यह दृढ़ निश्चय प्रत्यय, प्रतीति, अनुभूति होनी चाहिए कि मैं देह नहीं, अपितु अमर आत्मा हूँ और उसके साथ ही विषयासक्ति माता-पिता आदि के प्रति आसक्ति का स्वाभाविक रूप से त्याग हो जाना चाहिए। एक ओर यह कहना, कि मैं आत्मा हूँ, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव हूँ और दूसरी ओर विषयों में लिप्त होना-यह नहीं चल सकता। अपने आत्मस्वरूप में ऐसी दृढ़ प्रतिष्ठा, जो हमारे समग्र व्यक्तित्व को, हमारे आचार-व्यवहार को परिवर्तित कर दे, अत्यन्त कठिन है। इसके लिए निरन्तर तथा

पुनः-पुनः इसी सत्य के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की आवश्यकता है।

मृत्यु पर विजय पाने का, अपने आत्म-स्वरूप की अनुभूति के अतिरिक्त और कोई उपाय है? अधिकांश लोगों के लिए इस तरह का आत्म-अनात्मविचार कठिन होता है। इसीलिये यह प्रश्न किया गया है। हाँ, और भी उपाय है। हमारे आराध्य-शिव, विष्णु, श्रीकृष्णादि में हम एक बड़ी विलक्षण बात पाते हैं। शिवजी श्मशानचारी हैं, अपने चारों और मृत्यु के दूत, विषधर सर्पों को लपेटे हुए हैं, तथा उनके गले में कालकूट विष की नील रेखा है। चारों ओर मानो मृत्यु से ही परिवेष्टित हैं। भगवान् विष्णु काल के प्रतीक शेषनाग की शय्या पर सोये हैं। सहस्त्र फनों से विष उगलने वाला, काल का प्रतीक शेष, उनकी शय्या है। हमारे प्रिय बाल गोपाल तो कालिया नाग के फन पर नृत्य करते हैं। हमारे ये सभी आराध्य मृत्युंजय हैं। कोई मृत्यु की गोद में निर्भय सोता है, तो कोई मृत्यु पर आनन्द से नाचता है, तो कोई मृत्यु को आभूषण की तरह धारण करता है। तो, अगर हम इनमें से किसी के भी उपासक हों, तो हमें मृत्यु का भय कैसे हो सकता है? और यही है, मृत्यु पर विजय पाने का दूसरा उपाय-मृत्युंजय भगवान् से संयुक्त हो जाना। भगवान् के प्रति प्रेम, भक्ति, अनुराग, उपासना, आराधना का मार्ग ही मृत्यु पर विजय पाने का दूसरा उपाय है। पहला ज्ञान मार्ग-विचार मार्ग है, दूसरा भक्ति मार्ग है। ज्ञानी कहता है, कि मैं अमर, नित्य आत्मा हूँ, मुझे मृत्यु छू ही नहीं सकती। भक्त कहता है कि मेरे आराध्य देव मृत्युंजय हैं, मैं उनका सेवक हूँ, भक्त हूँ। मेरा भी मृत्यु कुछ नहीं बिगाड़ सकती। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि दोनों ही स्थितियों में देह को अमर बनाने का कोई प्रयत्न नहीं है। दोनों ही उपायों में देहासक्ति और देहात्म-बोध का त्याग आवश्यक है। बिना देहात्म-बोध का त्याग किये कोई भी मृत्यु पर विजय नहीं पा सकता।

भक्ति के द्वारा भगवान् को पकड़े रहकर हम किस प्रकार मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, इसका एक सुन्दर दिग्दर्शन श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में हुई एक घटना से मिलता है।

एक भक्त के एकमात्र जवान पुत्र की आकस्मिक मृत्यु हो गयी। शव की अन्त्येष्टि करने के बाद सांत्वना के लिए वे श्मशान से सीधे श्रीरामकृष्ण के पास आये। श्रीरामकृष्ण उस समय भक्तों के बीच बैठे सत्चर्चा कर रहे थे। भाराक्रांत पिता को शोकग्रस्त देखकर तथा उनके साथ घटित दुःखद घटना को सुनकर भक्त मंडलों में बैठे लोग उन्हें नाना प्रकार से समझाने लगे। लेकिन श्रीरामकृष्ण चुपचाप बैठे रहे। अचानक वे उठ खड़े हुए ओर अर्धबाह्य दशा में एक गाना गाने लगे, जिसका आशय इस प्रकार था:

जीव युद्ध के लिए तैयार हो जा।

काल तेरे घर में प्रवेश कर रहा है।

काली नाम का अस्त्र लेकर युद्ध कर

और यदि गंगा के किनारे युद्ध होगा

तो तेरी जीत निश्चित है। इत्यादि।

ताल ठोंकते हुए वीर भाव में गाये गये इस भजन से वहाँ का सारा वातावरण परिवर्तित हो गया। विषाद का भाव दूर होकर साहस के भाव का भक्त के हृदय में संचार हुआ।

भजन समाप्त कर श्रीरामकृष्ण अपने तख्त पर बैठकर वार्तालाप करने लगे। उन्होंने कहा कि पुत्र-शोक बहुत भयानक होता है। फिर उन्होंने अपने भानजे अक्षय की मृत्यु पर हुए उनके स्वयं के शोक का वर्णन करके कहा कि मैं तो सदा माँ जगदम्बा का नाम लेता हूँ, फिर भी मुझे इतना कष्ट हुआ। इस तरह उन्होंने उस शोकग्रस्त पिता को यह बताया कि वे स्वयं भी स्वजन-मृत्यु शोक का अनुभव कर चुके हैं। और अन्त में उन्होंने उपाय बताते हुए कहा कि दुःख-शोक तो जीवन में लगे ही रहते हैं। लेकिन जो व्यक्ति भगवान् को पकड़े रहते हैं, वे पूर्ण रूप से टूट नहीं जाते। गंगा में जब स्टीमर जाता है, तब उससे बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं, जो इतर नौकाओं से टकरा कर उन्हें डाँवाडोल कर देती हैं। छोटी-मोटी नौकाएँ तो उलट ही जाती हैं लेकिन बड़ी नौकाएँ एक दो झटके खाकर फिर स्थिर हो जाती हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति भगवान को पकड़े रहते हैं, उन्हें भी दुःख-शोक के झटके सहने तो पड़ते हैं, लेकिन वे उनसे विचलित नहीं होते। मृत्यु-रूपी शोक पर विजय पाने का भगवान् को पकड़े रहना उनकी शरण में जाना, एक

अमोध उपाय है। ऋषि मार्कण्डेय ने इसी उपाय से मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी।

मृत्यु कैसी हो ?

कठोपनिष्द् में यमराज-नचिकेता को आत्मतत्व का उपदेश देने के बाद यह भी कहते हैं कि जो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार में असमर्थ होता है, वह मरने के बाद अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जाता है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणुमन्येऽ नुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतिम् ।।

तात्पर्य यह है, कि यदि तत्वज्ञान के द्वारा अथवा भगवान् के प्रति ऐकान्तिक भक्ति द्वारा मृत्यु पर विजय पाना संभव न हो तो भी कम-से-कम अपने शुभ कर्मों के द्वारा अगला शुभ जन्म तो प्राप्त किया ही जा सकता है। यही नहीं, मृत्यु के समय की मनःस्थिति, प्राण-त्याग के ठीक पहले की मनःस्थिति, मनुष्य की भावी गति का निर्णय करती है। श्रीमद्भगवद्गीता के अष्टम-अध्याय में भगवान ने इस प्रश्न पर विस्तृत प्रकाश डाला है। वे कहते हैं, "जो व्यक्ति अन्तकाल में मेरा स्मरण करता हुआ देह-त्याग करता है, वह मेरे भाव को प्राप्त होता है, इसमें कोई संशय नहीं है। जिस-जिस विचार से भावित होकर उसका स्मरण करता हुआ व्यक्ति देह त्याग करता है, वह उसी को प्राप्त होता है। अतः सर्वदा मेरा स्मरण करते हुए, अर्जुन! तुम युद्ध करो। मुझ में मन-बुद्धि अर्पित करने पर तुम मुझे निश्चय ही प्राप्त होओगे।"

इसके बाद भगवान् विस्तार से मृत्यु के समय वांछनीय मनःस्थिति का वर्णन करते हैं। मुख्य बात है, अंतिम समय भगवान् का स्मरण बना रहना। लेकिन यह सारे जीवन के अभ्यास द्वारा ही संभव है। सारे जीवन हम संसार का चिंतन करते रहें और यह अपेक्षा करें कि अन्तिम समय भगवत्-स्मरण बना रहेगा- यह असंभव है। जिसने जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और परिस्थितियों में, सुख-दुःख में, विपदाओं और सम्पदाओं में, भगवद् स्मरण किया है, वही मृत्यु जैसी विषम परिस्थिति में भगवान् में मन लगा सकता है। अतः मृत्यु पर विजय पाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है, कि सारे जीवन उसकी तैयारी की जाए।

साधक मृत्यु से डरता नहीं, बल्कि उससे सबक सीखता है। वह मृत्यु के चिंतन द्वारा वैराग्य की वृद्धि करता है तथा सभी समय मृत्यु के लिए तैयार रहता है। वह मृत्यु की अपरिहार्यता को वरदान में परिणत करता है तथा सभी महापुरुष एवं धर्मशास्त्र इसकी कला हमें सिखाते हैं। मृत्यु हमें जीवन की अनिश्चितता की बार-बार याद दिलाती है। किसी भी समय हमारी मृत्यु हो सकती है। अतः साधक को सदा यह सोचना चाहिए, कि आज ही उसका अन्तिम दिन है यदि व्यक्ति इस प्रकार सोचेगा, तो वह सजग हो जायेगा और अशुभ एवं अपवित्र कार्यों से विरक्त हो जायेगा।

प्रसिद्ध ईसाई पुस्तक 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' के इस अंश को देखिए :

"तुम्हें अपने समस्त कार्यों और चिंतन में अपने को इस तरह नियोजित करना चाहिए, मानो अभी तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। यदि तुम पवित्र होगे, यदि तुम्हरा मन शुद्ध होगा, तो तुम्हें मृत्यु का अधिक भय नहीं होगा। यदि तुम मृत्यु के लिये आज तैयार नहीं हो तो कल कैसे होगे? कल अनिश्चित है, और यह कैसे पता कि तुम कल जीवित रहोगे?

"दीर्घ जीवन से क्या लाभ, यदि हम इतनी कम प्रगति करते हों। ओह! दीर्घ जीवन सदा हमें अच्छा नहीं बनाता, बल्कि हमारे पापों की ही वृद्धि होती है। काश! हमने संसार में एक दिन भी अच्छे से व्यतीत किया होता! बहुत से लोग धार्मिक जीवन में व्यतीत किये गये वर्षों को गिनते हैं, किन्तु उनके जीवन में परिवर्तन बहुत कम होता है। यदि मृत्यु भयावह है, तो संभवतः दीर्घ-जीवन और भी भयावह है, क्योंकि प्रतिदिन हम अपने पापों का बोझ बढ़ाते ही जाते हैं। वही व्यक्ति धन्य है, जिसके सामने मृत्यु का क्षण सदा विद्यमान रहता है, तथा जो प्रतिदिन मृत्यु के लिए तैयार रहता है। यदि तुमने कभी किसी व्यक्ति को मरते देखा है, तो सोचो कि तुम भी इसी तरह मरने वाले हो।

"सुबह सोचो, कि रात तक जीवित नहीं रहोगे, और जब संध्या होवे तो सोचो कि दूसरी सुबह देख पाओगे या नहीं। अतः इस तरह जीयो कि मृत्यु तुम्हें कभी अप्रस्तुत न पाये।"

□

# जो राम, जो कृष्ण, वहीं इस बार रामकृष्ण

- मोहन सिंह मनराल

## वर्तमान युग की आवश्यकता :

स्वामी सारदानन्द श्रीरामकृष्ण की जीवनी "श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग" के प्रारम्भ में अवतार पुरुषों के पुनः आविर्भाव की बात समझाते हुए कहते हैं, "यह स्पष्ट है कि नवीन धर्मों के आविष्कारक, जगद्गुरु सर्वज्ञ अवतार पुरुष युग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही आविर्भूत होते हैं। ....... वर्तमान काल में भी युग की आवश्यकता को पूर्ण करने के हेतु उनके शुभागमन को प्रत्यक्ष कर भारत पुनः धन्य हुआ है।"

वर्तमान युग की इस आवश्यकता को उजागर करते हुए वे आगे लिखते हैं-"विज्ञान की सहायता से अपने वर्तमान जीवन विस्तार के द्वारा विविध भोग सामग्रियों को प्राप्त करने में समर्थ होकर भी आधुनिक मानव जो शान्ति का अधिकारी नहीं हो पा रहा है, उसका भी यही कारण है। कौन उसका प्रतिकार करेगा? पृथ्वी की यह अशान्ति तथा हाहाकार किसके हृदय में निरन्तर ध्वनित हो उससे समस्त भोग साधनों का त्याग कराकर उसे युगानुकूल नवीन धर्म पन्थ के अवलम्बन में प्रवृत्त करेगा? प्राच्य एवं पाश्चात्य की धर्मग्लानि को दूर कर शान्तिपूर्ण नवीन मार्ग में जीवनको परिचालित करने की शिक्षा मानव को किससे प्राप्त होगी?"

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने आगमन की घोषणा करते हुए कहा है-"जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ।' क्यों प्रकट करता हूँ? वे आगे कहते हैं-'साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए (तथा) धर्म स्थापन करने के लिए युग-युग में प्रकट होता हूँ।'

स्वामी सारदानन्द वर्तमान युग की आवश्यकतानुसार इस प्रतिज्ञा के पूर्ण होने और श्रीरामकृष्ण के रूप में श्रीहरि का इस धराधाम पर अवतरित होकर आने की बात कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "युग की आवश्यकता के अनुसार यह कार्य सम्पन्न हुआ है - वास्तव में श्री भगवान जगद्गुरु के रूप में पुनः आविर्भूत हुए हैं। धैर्य के साथ श्रवण करो उनकी इन आशीर्वाद पूर्ण पवित्र उक्तियों को "जितने मत उतने पथ" पूर्ण आन्तरिकता के साथ जिस किसी पथ का तुम अनुष्ठान करोगे उसी से तुम्हें भगवत प्राप्ति होगी।"

## बिना उनकी कृपा उन्हें जानना असम्भव :

यह तो थी श्रीरामकृष्णदेव की आगमन वार्ता मगर स्वयं श्रीरामकृष्ण क्या कहते हैं जरा सुनें- 'इस बार गुप्त रूप से आना हुआ है जैसे राजा भेष बदलकर अपनी प्रजा को देखने जाता है। ज्योंही लोग उसे पहचानने लगते हैं वह तुरन्त वहाँ से चला जाता है।' पर उनकी इस बात पर किसे विश्वास हो? जब तक वे स्वयं जना न दें। भला कौन, कैसे उन्हें जान सकता है? अब देखिए वे गिरीशचन्द्र घोष जो साधुओं से दूर से भी भागते थे उन्हें सर्वप्रथम अवतार कहकर अपने विश्वास से सबको अचम्भित किया था, तो स्वामी विवेकानन्द अन्त तक संशय में पड़े तरह-तरह से परीक्षा करते रहे। परन्तु साधु नाग महाशय की बात ही कुछ और है। देखते ही जान गये और बोले, 'श्री ठाकुर के पास कुछ दिनों तक आने-जाने के बाद मैं जान गया कि ये साक्षात् नारायण हैं, गुप्त रूप से दक्षिणेश्वर में बैठकर लीला कर रहे हैं।" जब उनसे पूछा गया, "आपने कैसे जाना।" वे कहते हैं, "श्रीठाकुर ने ही कृपा करके जता दिया है कि वे कौन हैं। उनकी कृपा हुए बिना कोई उन्हें जान नहीं सकता और समझ भी नहीं सकता।" स्वयं ठाकुर जब उनसे पूछते हैं, 'तुम इसे (अपना शरीर दिखाकर) क्या समझते हो?" तो वे उत्तर देते हैं, "ठाकुर हमें कुछ न बताना होगा, मैं आपकी ही कृपा से जान गया हूँ कि आप वही हैं।"

परन्तु इसकी प्राणाणिकता भी चाहिए थी। सर्वधर्म साधना व भगवत प्राप्ति से प्रमाणित किया 'जितने मत उतने पथ'। मथुरामोहन के तर्क व संशय के आगे सत्य व विश्वास

को प्रमाणित किया-एक ही डाल पर लाल व श्वेत जवा पुष्प दिखलाकर और अपनी देह में 'काली व शिव' का एक साथ दर्शन कराकर। तो क्या आध्यात्मिक सत्यों के साक्षात्कार की इस प्रयोगशाला में यह अवतार लेना ही प्रमाणित नहीं होता कि किस प्रकार अवतार पुरुष 'गाय के थन' के समान धराधाम पर आकर जीवों की मुक्ति का पथ पुनः आविष्कृत करते हैं। दक्षिणेश्वर में सन् १८६१ में भैरवी ब्राह्मणी के आगमन के साथ ही यह प्रयोग प्रारम्भ हुआ और तब पूरा हुआ जब महापण्डितों की सभा ने एक स्वर से यह घोषणा की कि गदाधर (श्रीरामकृष्ण देव) अवतार है।

गदाधर अवतार हैं :

"गदाधर सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। ये अवतार हैं। नित्यानन्द की देह में चैतन्य का आविर्भाव हुआ है।" यह भैरवी ब्राह्मणी की घोषणा है और प्रतिवाद करते हैं मथुरामोहन। एक श्रीरामकृष्ण की गुरु तो दूसरा सरदार। एक की चिन्ता व चेष्टा है कि वे श्रेष्ठतम सिद्ध हों तो दूसरे की वे स्वस्थ्य व सामान्य आचरण करें। स्वयं श्रीरामकृष्ण इन दोनों के बीच एक कड़ी का कार्य करते हैं और ब्राह्मणी की बात मथुराबाबू के आगे प्रकट करते हुए दोनों से कहते हैं, 'देखो तो माँ, तुम जो मेरे बारे में कहा करती हो, आज मैं इनसे उन बातों को कह रहा था, पर ये तो कहते हैं कि अवतार दस ही हैं।"

मथुरामोहन ठाकुर के इस कथन की पुष्टि करते हैं। उत्तर में ब्राह्मणी अपने मत को दृढ़ता पूर्वक इन शब्दों में व्यक्त करती है -'क्यों भला? श्रीमद्भागवत में चौबीस अवतारों का वर्णन करने के पश्चात् व्यासदेव ने तो असंख्य वार श्रीहरि के अवतीर्ण होने की बात कही है।" ब्राह्मणी केवल इतना ही कहकर चुप नहीं होती है। वह अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए मथुरा बाबू को पण्डितों की सभा बुलाने का सुझाव देते हुए कहती है, "भागवत में बाईस अवतारों का उल्लेख है। पण्डितों की सभा बुलाओ। उनके समक्ष प्रमाणित कर दिखा दूँगी।"

मथुरा बाबू को यह सुझाव पसन्द आता है। वे सोचते हैं, अवश्य ही ब्राह्मणी के कथन का शास्त्रीय प्रमाणों से खण्डन हो जायेगा। तब श्रीरामकृष्ण का सरल व विश्वासी हृदय यह स्वीकार कर लेगा कि अवश्य ही उन्हें कोई रोग हो गया है। यदि ऐसा न किया गया तो ब्राह्मणी के कथन पर उनका विश्वास बढ़ता जायेगा और साथ ही उनका मानसिक विकार भी। अतः हर दृष्टि से पण्डितों की सभा बुलाना लाभदायक है।

कलकत्ते की पण्डित मण्डली में उस समय भक्त-साधक के रूप में वैष्णवचरण का विशेष सम्मान था। अतः उन्हें और गौरी पण्डित जो असाधारण क्षमतासम्पन्न थे को बुलाने का निश्चय किया गया। दक्षिणेश्वर में आयोजित इस सभा में वैष्णवचरण दल-बल सहित पधारे। सबके सम्मुख ब्राह्मणी ने यह अभिमत प्रकट कियाकि शास्त्रवर्णित भक्ति मार्ग के प्रसिद्ध आचार्यों के जीवन में जो-जो अनुभव उपस्थित हुए थे उन सबके साथ श्रीरामकृष्ण देव की तात्कालिक स्थिति का कोई भेद नहीं है। वे सभा-प्रमुख वैष्णवचरण को सम्बोधित करते हुए बोलीं, "आपकी धारणा इस सम्वन्ध में यदि भिन्न हो तो इसका कारण क्या है, मुझे समझाने की कृपा करें।"

दूसरी ओर जिसे लेकर यह खेल चल रहा था उनकी अवस्था ऐसी हो रही थी मानो वे किसी अन्य व्यक्ति के बारे में यह तर्क-वितर्क सुन रहे हों। वे सरल शिशु-तुल्य आचरण करते कभी स्वयं हंसते हैं, कभी अपलक इधर-उधर देखते हैं तो कभी बटुए से मशाला (सौंफ या कंबाब चीनी) निकालकर मुँह में डाल देते हैं। भैरवी शास्त्रों को सामने रख प्रमाण देतीं और वैष्णवचरण इससे सम्बन्धित प्रश्नों को गदाधर से पूछकर मिलान कर ले रहे हैं। स्वयं श्रीरामकृष्ण वैष्णवचरण का अंग स्पर्श कर बीच-बीच में कह उठते हैं- 'सुनो मेरी ऐसी अवस्था हुआ करती है।'

सभा समाप्त हुई। वैष्णवचरण ने अपना अभिमत प्रकट किया और कहा-"भैरवी ने जो कुछ भी कहा वह सब गदाधर में हू-ब-हू मिल रहा है, गदाधर अवतार हैं, इसे स्वीकार करने में मुझे तनिक भी द्विधा नहीं है।"

इतना ही नहीं, वैष्णवचरण ने यहाँ तक कहा कि जिन मुख्य-मुख्य उन्नीस प्रकार के भावों या अवस्थाओं के सम्मिलन का भक्तिशास्त्र में 'महाभाव' कहकर निर्देश किया गया है उनके सारे लक्षण श्रीरामकृष्ण के भीतर प्रकट हुए

प्रतीत हो रहे हैं। यह सब सुनकर मथुराबाबू अवाक् रह गये और श्रीरामकृष्ण (गदाधर) उनसे बोल उठे, "अरे यह क्या कह रहा है? अस्तु, रोग नहीं है सुनकर मेरा मन आनन्दित हो रहा है।"

ठीक ऐसा ही आनन्द व विस्मय स्वामी विवेकानन्द को उस वक्त हुआ होगा जब ठाकुर जी के शरीर त्याग के दो दिन पूर्व शंका पूर्वक वे विचार करते स्वयं से कह उठे थे, "अच्छा, इन्होंने तो कई बार कहा है कि वे ईश्वर के अवतार हैं यदि वे मृत्यु की इस वेदना से तड़पते समय भी आज ऐसा कहें तभी मैं विश्वास करूँगा। तत्क्षण ही अन्तर्यामी प्रभु ठाकुर उनसे बोल उठे, "ओ मेरे नरेन, अब भी अविश्वास? जो राम, जो कृष्ण, वही इस बार रामकृष्ण-पर तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।"

## अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण :

इसके उपरान्त स्वामी जी का विश्वास कितना प्रगाढ़ हुआ यह हम नहीं जान सकते हैं। मगर उनकी अभिव्यक्तियों से ही इसकी कुछ कल्पना की जा सकती है। वे कहते हैं - 'जिस दिन उनका (श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव का) जन्म हुआ उसी दिन से सतयुग आ गया। अब सब भेद-भाव उठ गये। आचाण्डाल प्रेम के अधिकारी होंगे। वे विवाद-भंजक हैं-हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-हिन्दू, इत्यादि सब भेद चला गया।'

स्वामीजी की इस उक्ति की अभिव्यंजना श्रीरामकृष्ण देव के एक अन्य गृही भक्त साधु नागमहाशय के शब्दों में भी दिखाई पड़ती है। वे कहते हैं-"श्रीठाकुर के आगमन से संसार में एक प्रवल प्लावन आ गया है जो सब कुछ वहा ले जायेगा। श्रीरामकृष्ण पूर्ण परब्रह्म नारायण हैं। समस्त भावों का यहाँ समन्वय है जो आज तक किसी दूसरे अवतार में नहीं हुआ है।" तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने भगवान् श्रीरामकृष्ण को अवतार वरिष्ठ कहकर प्रणाम किया है। आइए, उनके स्वर में स्वर मिलाकर हम भी उनके पाद पद्मों में इस विनय के साथ प्रणाम करें कि वे हमें अपने श्रीचरणों की भक्ति प्रदान करें -

ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः।।
जय श्री रामकृष्ण।

---

**बोध कथा**

## *ऐसी बानी बोलिए*

एक बार गौतम बुद्ध से अभय राजकुमार ने एक 'उभय' प्रश्न किया। 'उभय' प्रश्न वह होता है, जिसका उत्तर न तो 'हाँ' में दिया जा सकता है और न 'नहीं' में। जैसे यदि कोई किसी से प्रश्न करे, "क्या तुमने चोरी करना बंद कर दिया है?" तब यदि उत्तर देनेवाला 'हाँ' कहे, तो इसका अर्थ होगा कि वह पहले चोरी करता था। और यदि वह 'नहीं' कहे, तो इसका अर्थ निकलता है कि वह अब भी चोरी करता है।

अभय ने जो प्रश्न किया, वह यह था, "क्या श्रमण गौतम कभी कठोर वचन कहते हैं?" उसने सोच रखा था कि 'नहीं' कहने पर वह बताएगा कि एक बार उन्होंने देवदत्त को 'नारकीय' (नरकगामी) कहा था, और यदि 'हाँ' कहें, तो उनसे पूछा जा सकता है कि "जब आप स्वयं कठोर शब्दों का प्रयोग करने से स्वयं को रोक नहीं पाते, तब दूसरों को ऐसा उपदेश कैसे देते हैं?" बुद्धदेव ने अभय के प्रश्न का आशय जान लिया। उन्होंने कहा, "इसका उत्तर न तो 'हाँ' में दिया जा सकता है और 'नहीं' में।"

अभय राजकुमार की गोद में उस समय एक छोटा बालक था। उसकी ओर इशारा करते हुए बुद्धदेव ने पूछा, "राजकुमार, यदि दाई के अनजाने में यह बालक अपने मुख में काठ का टुकड़ा डाल ले, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उसे निकालने का प्रयास करूँगा।"

"यदि वह आसानी से न निकल सकता हो तो?"

"तो बायें हाथ से उसका सिर पकड़कर दाहिने हाथ की उँगली को टेढ़ा करके उसे निकालूँगा।"

"यदि खून निकलने लगे तो?"

"तो भी मेरा यही प्रयास रहेगा कि वह काठ का टुकड़ा किसी न किसी तरह बाहर निकल आए।"

"ऐसा क्यों?"

"इसलिए कि भन्ते, इसके प्रति मेरे मन में अनुकम्पा है"

"राजकुमार, ठीक इसी तरह तथागत जिस वचन के बारे में जानते हैं कि यह मिथ्या या अनर्थकारी है और उससे दूसरों के हृदय को ठेस पहुँचती है, तब उसका वे कभी उच्चारण नहीं करते। पर इसी तरह जो वचन उन्हें सत्य और हितकारी प्रतीत होते हैं तथा दूसरों को प्रिय लगते हैं, उनका वे सदैव उच्चारण करते हैं। इसका कारण यही है कि तथागत के मन में सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा है।"

श्री माँ सारदा के संस्मरण

# स्मृति – सुगंध

*– सोहराब मोदी*

सन् १९१८ ई० की बात है। मैं तब नवयुवक था। मेरे बड़े भाई श्रीरामकृष्ण जी के भक्त थे। उनके पास से ही सर्व प्रथम मैंने श्रीरामकृष्ण जी की सहधर्मिणी श्री माँ सारदा देवी के बारे में सुना था। बड़े भैया ने ही मुझे मुंबई से कलकत्ता माता जी के दर्शन करने के लिए भेजा था। मैं कलकत्ता आया और बागबाजार में माता जी के दर्शन के लिए गया। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। इसलिए भक्तों के लिए दर्शन बंद है- ऐसा मुझे बताया गया। मैंने स्वामी सारदानंद जी को प्रणाम किया और कहा-'मैं मुंबई से माता जी के दर्शन के लिए आया हूँ। माता जी से मंत्र दीक्षा प्राप्त करूँ ऐसी मेरी आकांक्षा है।" मेरी व्याकुलता देखकर अनको दया आयी। उन्होंने एक संन्यासी को मेरे साथ माता जी के पास जाने के लिए कहा। और मेरी प्रार्थना भी माता जी को निवेदित करने को उनको आज्ञा दी। माता जी को प्रणाम करके अत्यंन्त कातर होकर मैंने उनसे दीक्षा के लिए प्रार्थना की। माँ मेरी भाषा नहीं समझती थीं, तथा मुझे भी बंगाली नहीं आती थी। फिर भी देखा, कि उनकी बात सहज ही समझ में आ गयी। उनको भी मेरी बातें समझने में कुछ परेशानी नहीं आयी।

माँ बंगाली में बोली थीं तथा मैं हिन्दी में बोला था। उनसे विदाई लेते समय मैंने कहा – "माई जी, मैं जा रहा हूँ।" माँ ने बंगाली में कहा-"बाबा जाता हूँ" ऐसा नहीं बोलना चाहिए। बोल, "आता हूँ माँ।" एक सेवक ने मुझे माँ के वाक्य का अंग्रेजी में अनुवाद करके बताया "Mother says, don't say I am going, Say, I am coming". मैं तो सुनकर आश्चर्य चकित हो गया। मैं जा रहा हूँ और माँ कह रही हैं "आता हूँ कह" मुझे तब मालूम नहीं था कि बंगाल प्रांत में विदाई लेने की ऐसी ही प्रथा है। फिर मैं मुबई आया और साथ में ले आया एक मधुर स्मृति। माँ को देखकर मुझे लगा कि माँ प्रेम का सागर हैं। मन को लग रहा था कि She was wonderful and beautiful अद्भुत और सुंदर। उसके कई साल बाद मैं अभी वृद्ध हो गया हूँ। जीवन की इस दीर्घ कालावधि में माँ की बात जैसे कि मैं भूल ही गया था। अभी इतने दिनों से विस्मृत हो जाने वाली माँ मुझे याद आ रही हैं। उनकी वह अन्तिम अपूर्व वाणी मुझे सुनाई देती है "जाता हूँ, ऐसा नहीं कहते बाबा" आता हूँ कह। अब मुझे समझ में आया है जो उस समय दुर्बोध तथा समझ के परे लग रहा था – मैं उनके सान्निध्य से 'निकल आना' चाहता था परंतु अन्त में मैं जा नहीं पाया। हममें से कोई भी माँ के पास से जा नहीं सकता। माँ के पास वापस आना ही पड़ेगा। यही मरे जीवन की अन्तिम उपलब्धि है कि मैं माँ के पास वापस आया हूँ, वापस आ रहा हूँ। I am coming to my mother. आज इस पृथ्वी पर किसी भी वस्तु की प्राप्ति में मुझे कोई आकर्षण नहीं है। अब मैं उस पार से उनके बुलावे की राह देख रहा हूँ। किसी भी क्षण वह पुकार सुनाई दे सकती है।

---

"मैं हूँ, मुझ माँ के रहते भला डर क्या है? ठाकुर तो कह गये हैं, 'जो लोग तुम्हारे पास आयेंगे, अन्त में उनका हाथ पकड़कर मैं ले जाऊँगा।' जिसकी जो खुशी क्यों न करो, अपनी इच्छा के अनुसार क्यों न चलो, तुम लोगों के लिए ठाकुर को तो अन्त में आना ही पड़ेगा। भगवान् ने हाथ-पैर (इन्द्रियादि) दिये हैं; वे तो अपना खेल खेलेंगे ही।"

– श्री माँ सारदा देवी

# श्री रामकृष्ण के अंतरंग गृही भक्त-डॉ० रामचन्द्र दत्त

- डॉ० निवेदिता बक्शी
कुर्ला, मुम्बई

डूब-डूब अब रूप समुन्दर में मेरा मन रे।
पैठ पैठ गहरे जल में तू पावेगा प्रेमरतन रे।।

रामकृष्ण वचनामृत एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका अध्ययन करने से मनुष्य के चरित्र में आमूल परिवर्तन हो जाता है। पिछले २०० वर्षों में ऐसा ग्रन्थ शायद ही रचा गया है। वेद, उपनिषद और गीता का सार इसमें छिपा है। मास्टर महाशय (महेन्द्रनाथ गुप्त) की अनोखी देन में हम अपने आप को ठाकुर के साथ साथ स्वयं को पाते हैं और उनसे गहरा सम्बंध बना लेते हैं। स्वामी विशुद्धानन्द अपने जीवन के अंतिम दिनों में सिर्फ वचनामृत ही पढ़ते थे। यह जीवन का सार संसारियों के लिये भी है, संन्यासियों के लिये भी है, भक्तों के लिये भी है और ज्ञानियों के लिये भी है। इस ग्रन्थ में जीवन की हर समस्या का हल है। तो चलिये वचनामृत रूपी सागर में गोता लगाकर देखें। अरे! यह नीले रंग के चमकदार रत्न की प्राप्ति हुई है। जिसमें से भक्ति की शीतलता विच्छुरित हो रही है। ठाकुर के संस्पर्श में आकर रत्न की सुन्दरता और कीमत दोनों ही कई गुना बढ़ गयी है।

ठाकुर के भक्तों में सभी एक दूसरे के पूरक हैं। चलिये : वचनामृत के छोटे से दृश्य का अनुध्यान करते हैं। १८८३ के जून का महीना। रामचन्द्र दक्षिणेश्वर में आये हैं। मन में ईश्वर प्राप्ति के लिये तीव्र व्याकुलता है। कुछ ही दिनों पहले उन्होंने ठाकुर से कृपा प्राप्त की है। अब वे बैठे हुए 'चैतन्य चरितामृत' पढ़ रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनके सामने बैठे हैं और राम एकटक उन्हें देख रहे हैं। ठाकुर ने पूछा :- राम, मुझमें क्या देख रहे हो? राम ने भक्तिपूर्वक कहा :- मैं आपमें निमाई चैतन्य देख रहा हूँ। ठाकुर ने गम्भीरता से कहा- "हाँ, भैरवी ब्राह्मणी भी यही कहा करती थी।"

रामचन्द्र दत्त के पिता नृसिंह प्रसाद निष्ठावान वैष्णव थे। माता तुलसीमणि उनको ढाई वर्ष की उम्र में छोड़कर परलोक सिधार गयी थीं। माँ का गुण उनमें पूरा आ गया था। तुलसीमणि जब काम निपटाकर खाना खाने बैठती थीं उस समय यदि कोई भी याचक आता था तो अपना पूरा भोजन उसे दे देती थीं और स्वयं भूखी रह जाती थीं। उनके पितामह भी निष्ठावान पंडित थे। बाल्यपन से राम ईश्वर के सम्मुख नृत्य किया करते थे और ठाकुर को भोग चढ़ाकर अपने मित्रों को प्रसाद दिया करते थे। वे कट्टर वैष्णव थे। एक बार बचपन में वे हरिपाल नामक गांव में अपने कुटुम्ब से मिलने गये। वे दस साल के थे। वहाँ उन्हें मांस खाने के लिये जिद की गयी, पर उन्होंने नहीं माना। जब उन पर बल प्रयोग किया गया तो अकेले ही भाग गये और कोन्नगर पहुँचे। पास में एक भी पैसा नहीं था। एक स्त्री उन्हें अपने घर में ले आयी और भोजन दिया। एक सज्जन व्यक्ति ने बालक को कलकत्ता के लिये टिकट कटा दिया। उस तरह वे कलकत्ता पहुँचे।

वे पढ़ने में होनहार थे। मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद कुछ समय तक प्रतापनगर में नौकरी की। तुरंत कलकते में सरकारी नौकरी "क्वीनीन परीक्षक" के रूप में ग्रहण की । उनके ऊपर थे उड साहब। वे राम को उनके पांडित्य और कर्तव्यनिष्ठा के कारण बहुत चाहते थे और उन्हें रसायन शास्त्र सिखाने लगे। थोड़े ही दिनों के बाद उड साहब स्वदेश लौट गये। जाते समय उपहार स्वरूप राम को एक घड़ी और कई पुस्तकें प्रदान कीं। अब राम का विद्यानुराग बढ़ने लगा और अल्प समय में उनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और काफी अर्थ उपार्जन किया। उन्होंने सिमूलिया गली में नये मकान का निर्माण किया। कई बड़े-बड़े पंडित और डाक्टर उनके पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। धीरे-धीरे उनकी प्रोन्नति कलकत्ता मेडिकल कॉलेज में रसायन के परीक्षक के पद पर हो गयी।

उन्होंने कूचि वृक्ष की छाल से उदर रोग के लिये कूर्चिसिन नामक औषधि का आविष्कार किया। अब पैसा और भी आने लगा। जितनी अधिक आर्थिक उन्नति और नाम यश बढ़ने लगे उतनी ही उनमें नास्तिकता आने लगी और ज्यादा तार्किक हो गये। उनका विवाह हुआ और एक पुत्री भी थी। इसी समय सुख के संसार की नैया डोल गई। प्राणों से भी प्रिय ३ वर्ष की बालिका का देहान्त हो गया। वे पीड़ा से तड़प उठे और ईश्वर की खोज करते-करते मनमोहन और सखा गोपाल चन्द्र के साथ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के निकट पहुँचे। दिन था १३ नवम्बर १८७९ ई०। ठाकुर ने उन्हें प्रथम दर्शन में ही अपना लिया था। बस हर रविवार को ठाकुर के दर्शन के लिये जाने लगे।

एक दिन उन्हें स्वप्न में ठाकुर से मंत्र दीक्षा प्राप्त हुई। जाकर ठाकुर को उन्होंने यह बात बताई। ठाकुर अति प्रसन्न हुए। वे बोले- जो होता है स्वप्नसिद्ध वह होता है मुक्तिसिद्ध। इतनी दूर आने पर भी उनके मन से शंका नहीं गयी। स्वप्न के बारे में उन्हें श्रद्धा या विश्वास नहीं हुआ और अपने मन की अशांति के बारे में दोस्तों को बताने लगे। इसी बीच एक दीर्घकाय व्यक्ति आकर बोले "इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हो? धीरज रखो" थोड़ी ही देर में वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। ठाकुर को जाकर उन्होंने इस बारे में कहा। ठाकुर ने कहा, "इस तरह की अनेक घटनाएँ देखोगे।" उनके मन में अशांति बढ़ती गयी और बार-बार ठाकुर को वे तंग करने लगे। "मेरा कुछ नहीं हुआ" ठाकुर ने उन्हें समझाया, सब ईश्वर की इच्छा है। राम बार-बार शांति की कामना करने लगे। ठाकुर ने कठोर होकर कहा, "मैं किसी से कुछ नहीं लेता हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो आओ, नहीं तो जा सकते हो।" बस, ठाकुर की इस बात से वे इतने विचलित हुए कि प्राण त्यागने को तैयार हो गये। फिर ध्यान आया क्यों न स्वप्न में मिले मंत्र का जाप करूँ। शाम के अंधेरे में बरामदे में बैठकर मंत्र का जाप करने लगे। करुणानिधि अपने भक्त के सामने आये और सान्त्वना दी। ठाकुर उनके सिर पर अपने चरण रखते हैं और मंत्रदीक्षा देते हैं। उन्हें एक ही बात कहते हैं, तुम्हें साधना की जरूरत नहीं है। तुम भक्तों की सेवा करोगे तो मेरी सेवा होगी।

राम थोड़े मितव्यायी थे। इस कारण ठाकुर और भक्तों को अपने गृह में निमत्रंण देने के लिये हिचकिचाते थे। पर धीरे-धीरे ठाकुर की बात मान कर वे इतने भक्तों की सेवा करने लगे कि अनका गृह तीर्थस्थान में परिवर्तित हो गया। आज भी वहाँ पुष्पों से होली का महोत्सव होता है।

रामचन्द्र ने गिरीश घोष की तरह ठाकुर को अवतार-स्वरूप पहचाना और साधारण लोगों के भीतर ठाकुर के इस अवतार स्वरूप का प्रचार किया। इसके लिये वे स्टार थियेटर में १८ भाषण दिये। विषय था रामकृष्ण अवतार हैं या नहीं।

उनके घर में कीर्तन की धूम पड़ जाती थी। बड़े-बड़े कीर्तनियाँ आते थे। ठाकुर भावसमाधि में चले जाते थे। ठाकुर के साथ-साथ उनके भक्त नृत्य करते थे। उन्होंने पखावज बजाना भी सीखा था।

उन्होंने ठाकुर को लाटू महाराज को भेंट स्वरूप दिया था जो कालान्तर में अद्‌भुत संन्यासी 'अद्‌भुतानन्द' के नाम से विख्यात हुए। यह संन्यास नाम उनके गुण धर्म के आधार पर उनके गुरुभाई स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें प्रदान किया था। एक बार ठाकुर ने राम से पूछा, 'तम्हें क्या चाहिये, माँग लो।' मन में विचार करने के बाद उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा - 'मुझे नहीं मालूम मेरे लिये क्या अच्छा है। आप मेरे लिये जो अच्छा हो वही दीजिये।' ठाकुर प्रसन्न होकर उनके सिर पर चरण रखते हैं। रामचन्द्र दत्त के विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। एक बार वे ठाकुर के लिये जलेबी खरीदकर दक्षिणेश्वर ले जा रहे थे। रास्ते में एक बालक जलेवी के लिये मचलने लगा। बालक को भगवान का रूप जानकर एक जलेबी बालक को दे दी। सारा दिन बीत गया। शाम को ठाकुर को भूख लगी तो राम ने जलेबी ठाकुर के सामने रख दी। ठाकुर ने जैसे ही हाथ बढ़ाया कि वे कोशिश करके भी खा नहीं पाये और राम से कहा - मैं हर चीज ईश्वर को अर्पण करके ग्रहण करता हूँ। तुम

इससे अग्रभाग किसी को भी नहीं देना। राम अवाक् रह गये।

राम को ठाकुर पर अगाध विश्वास था। एक बार वे अत्यन्त अस्वस्थ हो गये पर कोई भी औषधि नहीं ली। केवल ठाकुर के चरणामृत का पान करते रहे। धीरे-धीरे वे ठीक हो गये। राम हमेशा ठाकुर का प्रसाद ग्रहण करने के बाद ही भोजन ग्रहण करते थे। एक बार ठाकुर ने उनकी परीक्षा ली। सबेरे-सबेरे राम ने मिठाई लायी थी। ठाकुर ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। शाम हो गयी। वे पंचवटी में चले गये। अब राम दुविधा में पड़ गये। घर जाने का भी समय हो रहा था। पास के कचरे डब्बे में ठाकुर का जूठन पड़ा हुआ था। वे उसी को उठाने ही वाले थे कि दीनदयाल ठाकुर आ गये और प्रसाद दिया।

ठाकुर के अंतिम दिनों में श्यामपुकुर में कालीपूजा का आयोजन किया गया। गिरीश, राम आदि अनेक भक्त स्थिर होकर बैठे थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि ठाकुर माँ की पूजा करेंगे। ठाकुर भी स्थिर होकर बैठे थे। राम ने गिरीश घोष के कानों में ठाकुर की पूजा करने के लिये कहा। गिरीश घोष ने ठाकुर के चरणों में अंजलि दी। सब 'जय रामकृष्ण' बोलने लगे। श्यामपुकुर 'जय रामकृष्ण' की ध्वनि से गूँज उठा। ठाकुर को अवतार-वरिष्ठाय के रूप में पूजा गया।

ठाकुर के कहने पर रामचन्द्र दत्त ने १८८३ के मध्य भाग में शहर से दूर एक उद्यानवाटी का क्रय किया। चारों ओर जंगल था। उसके अंदर तुलसी कानन कुंड था जो 'रामकृष्ण कुंड' के नाम से जाना जाता है। ठाकुर ने भक्तों के साथ कई महीनों बाद पदार्पण किया। आज वह योगोद्यान ठाकुर जी का महातीर्थ स्थान बन गया है। यह स्थल काकुड़गाछी में है। वहाँ के आम्र पेड़ का नाम "रामकृष्ण भोग" है जहाँ पर ठाकुर की देह-अस्थि और चिताभस्म का अवशेष है।

रामचन्द्र दत्त ने अपने ढंग से रामकृष्ण नाम का प्रचार किया। रामकृष्ण के भक्तों को वे अपने सिर पर उठाकर रखते थे। जन्माष्टमी के समय कितनी भी अस्वस्थता क्यों न हो, ठाकुर का नाम संकीर्तन करने के लिये रास्ते में निकल पड़ते थे। नवयुवकों को वे ठाकुर के पथ पर चलने के लिये खूब प्रोत्साहित करते थे। उन्होंने रामकृष्ण के उपदेशों पर एक छोटी सी पुस्तिका - "तत्वप्रकाशिका" प्रकाशित की थी। "तत्वमंजरी" पत्रिका के आधार पर वे ठाकुर का प्रचार कार्य किया करते थे। वे सादगी के पुजारी थे। आदर्श गृही भक्त थे। ठाकुर राम की भक्ति की और भक्त-सेवा की खूब प्रशंसा करते थे।

ठाकुर ने अपने अंतिम समय में राम, महेन्द्रनाथ गिरीश, विजय और केदार को अपनी शक्ति का थोड़ा अंश दान दिया था। इस कारण रामचन्द्र दूसरों में रामकृष्ण भाव उत्पन्न करने की शक्ति रखते थे। एक बार एक महाशय गर्व से जाकर राम को बोले, रामकृष्ण को मैं तभी मानूंगा जब आप कोई करिश्मा दिखायें। राम उत्तेजित होकर बोले आज से १३ दिनों के अन्दर आप में परिवर्तन आयेगा। बस फिर थोड़े ही दिनों में वे अविराम हँसने लगे। लोगों ने समझा कोई प्रेत सवार है। पर रामचन्द्र ने उचित उपदेश देकर उन्हें ठीक किया। ठीक इसी तरह एक वकील को भी रुलाया। फिर उन्हें ठाकुर पर विश्वास हुआ।

रामचन्द्र की तबीयत दिनों दिन खराब होने लगी। उन्हें मधुमेह रोग ने पकड़ लिया। उनका हृदय दुर्बल हो गया था। सिमुलिया में डेढ़ महीने लेटे-लेटे बिता दिये। मन ही मन उन्होंने जाना कि अंतिम समय निकट है और काकुड़गाछी योगोद्यान में जाने की जिद करने लगे। लोगों के मना करने पर भी वे पालकी में वहाँ गये और ५ दिन वहाँ रहे। बेलुड़ मठ के संन्यासी प्रत्यह उनके दर्शन के लिये आते थे। मृत्यु के १ घंटा पहले वे गंगा तीर जाना चाहते थे। कोई समझ नहीं पा रहा था। उनके लिये "रामकृण कुंड" ही गंगा था। १७ जनवरी १८९९ को रात के ८ बजे कुंड के किनारे देहत्याग करके वे रामकृष्ण लोक में सदा-सदा के लिए चले गये।

उनके उदार हृदय, भक्त-सेवा, उर्जिता भक्ति ने उन्हें रामकृष्ण मंडली में ऊँचा स्थान प्रदान किया है। उनका मंत्र था-जो ठाकुर के भक्त हैं वे मेरे प्राण हैं।

□

# आध्यात्मिक-प्रश्नोत्तरी

- ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द

१. प्रश्न - *क्या स्वप्न अर्थहीन होते हैं या उनका भी कोई विशेष तात्पर्य होता है? कभी कभी भविष्य में होनेवाली घटना स्वप्न में आकर दिख जाती है, यह कैसे होता है?*

उत्तर - अवश्य ही स्वप्न एक विज्ञान है, पर अभी तक स्पप्न में दिखनेवाली घटनाओं का निश्चित अर्थ नहीं लगाया जा सका है। फ्रायड आदि कुछ पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्नों के पढ़ने के प्रयास किये हैं और स्वप्न-विज्ञान पर कुछ ग्रन्थ भी लिखे हैं। किन्तु उन्होंने स्वप्न में दिखनेवाली घटनाओं को जिन जिन बातों का प्रतीक माना है, वे सर्वदा सच नहीं उतरती। ऊल-जुलूल दिखनेवाले सपनों में भी, सम्भव है, कुछ विशेष अर्थ निहित हों, पर उनकी जानकारी नहीं हो पायी है। कुछ लोग स्वप्नों को अर्थहीन मानते हैं। पर निश्चयपूर्वक ऐसा कह देना विज्ञान-सम्मत नहीं है। साधारण तौर पर यह कहना ज्यादा गलत नहीं होगा कि अवचेतन मन के संस्कार ही हमें सपनों में दिखाई देते हैं। हमारे मन में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें हम चेतन स्तर पर लाने से रोकते हैं क्योंकि वे अवांछनीय हैं। अतः जब चेतन मन सो जाता है यानी जब उसका अंकुश नहीं रहता, तब स्वप्नावस्था में वे दबी हुई अवचेतन मन की प्रवृत्तियाँ उभरती हैं। अतः स्वप्न में दिखनेवाली घटना का सम्बन्ध हमारे अवचेतन मन में छिपी अवांछनीय प्रवृत्तियों के साथ लगाया जाता है।

इसी प्रकार, जिसके मन में अच्छे-ही-अच्छे संस्कार हैं, जिसमें शुभ विचार उठते हैं, वह सपने में भी शुभ प्रतीक देखता है। साधु-महात्माओं का दर्शन, सुन्दर दृश्य, पावन तीर्थ-मन्दिरों का दर्शन - ये सब शुभ संस्कारों के प्रतीक है।

यह भी सत्य है कि कभी कभी भविष्य में होनेवाली घटनाओं का आभास स्वप्न में पहले से हो जाता है। पर इस आभास की वैज्ञानिक प्रक्रिया कैसी है, इसे कहना कठिन है।

२. प्रश्न - *देश में वर्तमान परिस्थिति भयावह है। इससे उबरने का कोई रास्ता सुझा सकते हैं?*

उत्तर - यदि शासकों में राष्ट्रहित के सामने अन्य किसी भी बात का मूल्य न समझकर कठोरता से शासन करने का भाव हो, तो इस परिस्थिति में बहुत-कुछ सुधार हो सकता है। मानव में अब भी पाशविकता कूट-कूटकर भरी है। पशु केवल भय द्वारा ही शासित होता है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में से यह भय उठ गया है, इसीलिए लोग स्वार्थसिद्धि के लिए अन्याय और मनमानी करते हैं, स्व-हित के समक्ष देशहित को ताक पर रख देते हैं। अतः उबरने का रास्ता है हर नागरिक का उत्कट राष्ट्रप्रेम, अपनी मातृभूमि पर अभिमान।

३. प्रश्न - *भगवान श्रीरामकृष्णदेव ने कहा है कि कोई अगर भगवान के लिए तीन दिन और तीन रात रो ले, तो उनके दर्शन हो सकते हैं। उनकी इस उक्ति का आशय क्या है? इस प्रकार की आकुलता कैसे लाई जा सकती है?*

उत्तर - श्रीरामकृष्ण का तात्पर्य ईश्वर को पाने की आकुलता से है। उन्होंने बारम्बार 'भगवान के लिए व्याकुलता' को ही भगवत्प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन माना हैं जैसे हम संसार में विषय भोगों की प्राप्ति के लिए तथा उनके बिछुड़ जाने से आकुल होते हैं, उसी प्रकार हम यह सोचकर आकुल हो सकें कि 'हे ईश्वर, तुम्हारे दर्शन नहीं हुए, तुम्हारी प्राप्ति नहीं हुई', तो ईश्वर की कृपा होती है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर के लिए हृदय में चाह उपजे। संसार की अन्य वस्तुओं के लिए जैसे चाह होती है उसी प्रकार की चाह यदि प्रभु के लिए हो, तो वे दर्शन देते हैं। ऐसी दैवी विकलता हममें आ गयी, तो हम ईश्वर के दर्शन के लिए बिसुरते हैं। यदि हमारा प्रिय परिजन काल-कवलित हो जाए, तो महीनों हमारी आँखों के आँसू नहीं सूखते। वैसे ही ईश्वर के बिछोह में हम तड़प सकें और सचमुच तीन दिन और तीन रात उस बिछोह के आँसू न सूखें, तो श्रीरामकृष्ण का दावा है कि हमें प्रभु के दर्शन होंगे।

इस विकलता को बढ़ाने का साधन है - विवेक-बुद्धि, जो हमें यह बतलाये कि प्रभु ही हमारे एकमात्र चिरन्तन प्रेमास्पद हैं। संसार के प्रेमी तो सभी के सभी नश्वर हैं। कोई भी हमारा प्रियजन हमारे साथ सदैव के लिए नहीं रहेगा। पर ईश्वर ही ऐसे हैं जो जन्म से पूर्व हमारे साथ थे, वर्तमान में भी उन्हीं की सत्ता में हम जीवित हैं और मृत्यु के उपरान्त भी वे हमारे अपने बने रहेंगे - जब, इस प्रकार का तीव्र अपनापा उनके प्रति आता है, तब उनके प्रति प्रेम बढ़ता है और तब उनका बिछोह हमें पीड़ित करता है। इसी भाव को तीव्र करने से आकुलता बढ़ती है।

४.प्रश्न-*क्या संसार में रहकर साधना हो सकती है?*

उत्तर - क्यों नहीं! यदि हमार दृष्टिकोण उचित हो, तो संसार के कार्य ही हमारे लिए साधना बन जाते हैं। यदि हमने संसार के कार्यों को सामान्य दृष्टि से न देखकर यह सोचा कि

यही मेरे लिए उस प्रभु को पाने की साधना है, तो आश्चर्यजनक रूप से उन्हीं कार्यों में उच्च भाव आ जाता है। उचित दृष्टिकोण हो पाया या नहीं, इसके दो लक्षण हैं - (१) जो भी कार्य हम करेंगे, उसे बड़ी लगन से करेंगे। उसमें किसी प्रकार का टालमटोल का भाव न होगा। हमारी कार्यक्षमता बढ़ जाएगी। (२) साथ ही हमारे मन में उन कार्यों के प्रति एक प्रकार की निर्लिप्तता जन्म ले लेगी। पहले हम कर्मों के द्वारा उद्वेलित हो जाते थे, पर साधना का भाव बनाकर कार्य करने से मन का उद्वेलन कम होगा। क्रमशः इससे 'कर्मयोग' में हमारी प्रतिष्ठा हो जाएगी।

५. प्रश्न - *साधना करते-करते कभी-कभी मन में बड़ी शुष्कता आ जाती है। क्या यह अधःपतन का लक्षण है?*

उत्तर - नहीं। आध्यात्मिक जीवन में उन्नति कभी सरल रेखा नहीं होती। यह तरंगवत् होती है। कभी कभी हमारा मन बड़ा प्रफुल्ल होता है और उस समय हमें ऐसा लगता है कि लक्ष्य अब अधिक दूर नहीं है। फिर अचानक अकारण ही मन अवसाद से भर जाता है और हमें बड़ी शुष्कता मालूम पड़ती है। उस समय साधन-भजन बिल्कुल नीरस मालूम पड़ता है और हम कोशिश करके भी मन को थोड़ी देर के लिए भी शान्त नहीं कर पाते। यह मन का स्वभाव है। यह अधःपतन नहीं है। जैसे हम किसी पहाड़ की चोटी पर चढ़ते है तो कई बार हमें ढलान में से जाना पड़ता हैं इसका मतलब यह नहीं कि हम नीचे उतर रहे हैं, भले ही ऊपरी दृष्टि से ऐसा लगे। वास्तव में हम ऊपर चढ़ने के लिए ही नीचे उतरते हैं। रास्ता उसी ढलान में से होकर जाता है। ठीक यही बात साधना के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में नीचे उतरने की कोई बात ही नहीं है, बशर्ते कि हम नियमपूर्वक साधना में लगे हों। जब मन के अवसाद का समय आने, तो हम हताश न हों, बल्कि यह धारणा भीतर पक्की करें कि थोड़े समय बाद यह अवसाद निकल जायेगा। हाँ, हम अवसाद में समझौता न करें। सदैव अपने आपसे कहते रहें- 'मेरा आदर्श ऊँचा है। वहाँ मुझे पहुँचना ही है। इस ढलान में ही मुझे बैठ नहीं जाना है।' इस प्रकार की सतर्कता और निष्ठा हमें संतत ऊपर उठाती रहेगी। एक दिन ऐसी स्थिति हो जायेगी कि शुष्कता सदैव के लिए सूख जायेगी और हमारा अन्तर अवशेष रस से सराबोर हो जायेगा।

५. प्रश्न - *कुछ लोग कहते हैं कि ध्यान के अभ्यास के लिए जीवन को बदलने की आवश्यकता नहीं। तो क्या आध्यात्मिक प्रगति के लिए शुद्ध नैतिक जीवन आवश्यक नहीं है?*

उत्तर - आवश्यक है। जीवन की शुद्धता के बिना अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिल पाता। जब हमारी सारी शक्तियाँ एकत्र होकर ईश्वर की ओर जाती हैं तभी उनकी अनुभूति होती है। ईश्वर की अनुभूति या ध्यान की तन्मयता में हमारे मन की अशुद्धि ही बाधक है। मन शुद्ध हुआ कि लक्ष्य प्राप्त हो गया। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते थे कि शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक है। यदि जीवन की क्रियाएँ शुद्ध न हों तो मन भी शुद्ध नहीं रह पाता। मन की अशुद्धता के कारण ध्यान के अभ्यास में गति नहीं आ पाती। अतः आवश्यक है कि हम ध्यान का अभ्यास करें तथा साथ ही जीवन को भी शुद्ध बनाने का प्रयास करें।

६. प्रश्न - *आजकल चिकित्सा के क्षेत्र में कुछ चिकित्सक सम्मोहन (हिप्नाटिज्म) का सहारा लेने की सलाह देते हैं। इस पर आपकी क्या राय है ?*

उत्तर - सम्मोहन मेरा विशेष क्षेत्र नहीं है, अतः साधिकार उस पर कुछ कहना कठिन है। तथापि सिद्धान्ततः इतना तो कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति बार बार अपने ऊपर सम्मोहन कराता है, उसका मन दुर्बल हो जाता है और इच्छा-शक्ति कमजोर पड़ जाती है। यदि चिकित्सक ऐसा कहें कि किसी जीवन की रक्षा या मर्मान्तक पीड़ा को कम करने के लिए सम्मोहन के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है, तब तो बात ठीक है और ऐसी परिस्थितियों में सम्मोहन का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु छोटी छोटी बातों के लिए यथा वजन कम करने या धूम्रपान की आदत रोकने के लिए सम्मोहन का सहारा लेना ठीक नहीं दिखता।

आजकल चिकित्सक भी सम्मोहन से पैदा होनेवाले खतरों के प्रति सजग हो रहे हैं। कुछ समय पूर्व एक चिकित्सक ने लेख प्रकाशित किया था कि किस प्रकार एक रोगी, जिस पर सम्मोहन का प्रयोग करके उसके रोग को दूर किया गया, एक उससे भी अधिक रोग से आक्रान्त हो गया। उस रोगी को नाखून कुतरते रहने की खराब आदत थी। वह उस आदत को छुड़वाने हिप्नाटिस्ट के पास गया। वह रोग तो दूर हुआ पर उससे बदतर रोग उसे लग गया। जब सम्मोहन से यह दूसरा रोग दूर किया गया, तो एक और खराब तीसरा रोग उसे लग गया। इस प्रकार करते करते वह शराब और नशीली दवाइयाँ खाने का आदी हो गया। तब चिकित्सक ने उस पर सम्मोहन का प्रयोग करना रोक दिया, क्योंकि उसे डर लगने लगा कि इसके बाद कहीं रोगी आत्महत्या करने पर न उतारू हो जाय।

स्वास्थ्य

# पैंट की माप ही हृदय रोग का पूर्व संकेत

पुरुषों के पैंट की कमर वाले हिस्से की माप जब ९० सेंटीमीटर और औरतों की ८५ सेंटीमीटर से अधिक हो जाए तो ऐसे लोगों में हृदय रोग की आशंका बढ़ जाती है। इंदिरागांधी हृदय रोग संस्थान के संयुक्त निदेशक डा. आर. के. अग्रवाल ने कहा कि यह लक्षण मोटापा का है जो हृदय रोग का पूर्व संकेत हैं। डा. अग्रवाल यहां कार्डियोलॉजिकल सोसायटी ऑफ इंडिया (सी.एस. आई.) की राज्य शाखा द्वारा आयोजित वैज्ञानिक सत्र को संबोधित कर रहे थे।

संयुक्त निदेशक ने कहा कि हृदय रोग कुछ अन्व बीमारियों के साथ जुड़कर समूह बन गया है जिसे सिन्ड्रोम कहा जाता है। हृदय रोग से सीधे तौर पर मधुमेह, उच्च रक्तचाप और मोटापा जुड़ गए हैं। बीमारी के प्रारंभिक लक्षणों की पहचान सभव है। सीने में किसी प्रकार का दर्द २० मिनट तक बरकरार रहे तो अविलम्ब हृदय रोग विशेषज्ञ से सम्पर्क कर ईसीजी जांच करवानी चाहिए और अस्पताल में भर्ती होकर चिकित्सक के पर्यवेक्षण में रहना चाहिए। हृदय रोग के कारणों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि धूम्रपान, उच्च रक्तचाप, मोटापा, मांसाहारी एवं वसायुक्त भोजन और शारीरिक मेहनत न करने से हृदय रोग की आशंका बनी रहती है। हृदय रोग से बचने के लिए जरूरी है कि सप्ताह में कम से कम चार दिन आधा घंटा तेज गति से पैदल चला जाए। हृदय रोग से पीड़ित हो जाने के बाद रोगियों को चिकित्सक के परामर्श से एस्प्रीन का सेवन करना चाहिए। एस्प्रीन वैज्ञानिक सत्र की अध्यक्षता डा. ए. के. ठाकुर, डा. एस. एन. आर्या, डा. एस. एन. मिश्रा, डा. गोपाल प्रसाद सिन्हा ने किया। दूसरे वैज्ञानिक सत्र को संबोधित करते हुए संजय गांधी स्नातकोत्तर संस्थान, लखनऊ के वरीय हृदय रोग विशेषज्ञ डा. सत्येन्द्र तिवारी ने कहा कि ४५ वर्ष की उम्र से अधिक के लोगों को हृदय रोग से बचने के लिए नियमित व्यायाम करना जरूरी है। इसके लिए प्रतिदिन तीन-पाँच किलोमीटर तक टहलना, सायकिल चलाना और तैराकी करना लाभदायक है व्यायाम के लिए दौड़ना आवश्यक नहीं है। हृदय रोग से बचने के लिए धूम्रपान, तम्बाकू और शराब के सेवन से बचना चाहिए। डा. तिवारी ने कहा कि हृदय रोग से पीड़ित माता-पिता को अपने बच्चों के खान-पान पर विशेष तौर से ध्यान देना चाहिए। ऐसा न हो कि बचपन में ही वे अधिक भोजन के कारण मोटापा के शिकार हो जाएं। डा. तिवारी ने कहा कि हृदय रोग अब लाइलाज नहीं रहा। इसका इलाज संभव है। वैज्ञानिक सत्र का विषय प्रर्वतन सी.एम.आई. के अध्यक्ष डा. बसन्त सिंह ने किया। डा. ए. के. झा ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

# AN APPEAL

The Ramakrishna Mission Institute of Culture began its modest activities in 1938 and finally settled at the present site in 1961. It has grown over the years into an internationally reputed educational and cultural centre. For the last several years, the Institute has been severely handicapped due to lack of space. In the library, the stacks cannot accommodate the increasing number of books and periodicals. The reading room of the library has become too small for an average of 1500 people who use its facilities every day. There is also a severe shortage of space in the school of languages, research department, publication department, museum and art gallery, This acute shortage of space has prevented the Institute from offering its services efficiently and from meeting the growing public demand on its facilities.

To remedy this, the Institute embarked upon an expansion project a few years ago. The first phase of this project involved purchasing a plot of land, 40' kottahs in size, adjacent to the present building, for Rs. 1.76 crores. The second phase involved diverting a public road that ran between the present building and the recently purchased land, for which the Institute spent another Rs. 0.38 crores. The total cost of the next phase of this project, which involves constructing a building and furnishing the same, is estimated at Rs. 8.40 crores.

For years the Institute has been getting the valued patronage of the intelligentsia and the devotees of the Ramakrishna Mission: We therefore appeal to all of you to stand by us and donate generously to this project.

Donations to this project are eligible for tax exemption under Section 80G of the Income Tax Act, 1961. The demand drafts and cheques drawn in favour of The Ramakrishna Mission Institute of Culture may be sent to the following address:


SWAMI PRABHANANDA

**Secretary, The Ramakrishna Mission Institute of Culture**

**Gol Park, Kolkata - 700 029**

Telephone: (91-33) 464-1303 (3 lines), 465-2531 (2 lines), 466-1235 (3 lines)

Fax : (91-33) 464-1307

E-mail : rmic@vsn1.com or, rmics1@giasc101. Vsn1.net.in

Website : www. sriramakrishna.org


**Printed by :-** SRASWATI Printing work's Mb. No.09835215591 & Composing by *CLASSIC*, Chapra.

डाक पंजीयित संख्या – बी.एच.पी. १४-८७

# हमारा हिन्दी प्रकाशन

# शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

**भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद**
**स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण**

**तीन खण्डों में**

**प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००**

**तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विभिन्न प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।**

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

**रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२**

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।